वन्देमातरम् ।

हिन्दी नवयुग ग्रन्थमालाका १८वाँ ग्रन्थ

देशबन्धु चित्तरञ्जन दास

लेखक

पं० सम्पूर्णानंद बी० एस० सी०

जीतमल लूणिया

हिन्दी साहित्य मन्दिर

इन्दौर (सी० आई०)

प्रथम बार]   अक्टूबर १९२१ ।   ] मूल्य ॥

प्रस्तावना।

आज मैं पाठकोंके सामने देशबन्धु चित्तरञ्जन दासकी जीवनी रखता हूँ। पुस्तक बहुत छोटी है। इसका प्रधान कारण यह है कि प्रकाशक महोदयकी यह इच्छा थी—और यह इच्छा सर्वथा ठीक थी—कि आगामी कांग्रेसके पहिले हिन्दी जगत्को इस महानुभावके चरित्रका किञ्चित् परिचय करा दिया जाय। अतः समय थोड़ा था। इस थोड़े समयमें अधिक सामग्रीका संग्रह न हो सका।

एक कारण और है। देशबन्धुने राजनीति क्षेत्रमें विशेष रूपसे अभी थोड़े ही दिनोंसे पदार्पण किया है। अतः उनके सार्वजनिक जीवनके महत्त्वके दिन तो अब आरहे हैं। हमको पूर्ण विश्वास है कि वह देशकी अमितसेवा करके अमृत कीर्ति के भाजन होंगे।

प्रस्तुत पुस्तक लिखनेमें मुझे उनकी दो बँगला जीवनियों—श्रीसुकुमाररञ्जन दासगुप्त कृत 'चित्तरञ्जन' और श्रीमतीनलिनीबाला देवी प्रणीत 'देशबन्धु चित्तरञ्जन'से बड़ी सहायता मिली है। एतदर्थ मैं उक्त दोनों पुस्तकोंके रचयिताओंका आभारी हूं।

जालिपादेवी, काशी।
२७ भाद्र ७८।

सम्पूर्णानन्द।

पहिले इसे अन्त तक जरूर पढ़ लीजिये।

हिन्दी भाषा में राष्ट्रीय साहित्य की बड़ी कमी है। इस अभाव को पूरा करने के लिये हम राष्ट्रीय पुस्तकें प्रकाशित करने का प्रयत्न कर रहे हैं। परन्तु इस कार्य्य में देशबन्धुओं की सहायता की बड़ी आवश्यकता है। अतएव निवेदन है कि कम से कम इस "नवयुग ग्रन्थमाला" के आप स्थायी ग्राहक होकर हमारी सहायता कीजिये। स्थायी ग्राहकों में नाम दर्ज कराने के लिये केवल एक दफ़ा आठ आने आपको भेजने पड़ेंगे परन्तु इससे आपको कितने लाभ होंगे सो सुनिये।

(१) 'नवयुग ग्रन्थमाल' से प्रकाशित सब पुस्तकें पौनी कीमत में मिलेंगी।

(२) हमारे यहाँ से जो पुस्तकें निकलें उनमें से आप को जो पसन्द हो लें, न पसन्द हो, न लें। कोई बन्धन नहीं।

(३) हमारे यहाँ सब जगहों की हिन्दी की सब प्रकार की उत्तम पुस्तकें भी मिलती हैं। इनमें से आप जो पुस्तकें हमारे यहाँ से मंगावेंगे, प्रायः उन सब पर एक आना रुपया कमीशन दिया जावेगा।

(४) हमारे यहाँ जो नई पुस्तकें आवेंगी उनकी सूचना बिना पोस्टेज लिये ही घर बैठे आपको देते रहेंगे।

अब आप सोचिये कि स्थाई ग्राहक बनने से आपको सदा के लिये कितना लाभ होता रहेगा और कई आठ आने आपके बच जावेंगे।

क्या अब भी आप स्थाई ग्राहक न होंगे ?

अब हमें पूर्ण आशा है कि आप अति शीघ्रही स्थायी ग्राहकों में नाम लिखावेंगे और हमारी प्रकाशित की हुई पुस्तकों में से जो आपको पसन्द हों साफ़ नाम लिखकर शीघ्र आर्डर भेजने की कृपा करेंगे।

नीचे लिखी हुई पुस्तकें ग्रन्थमालामें प्रकाशित हुई हैं।

भारतमें नया जीवन पैदा करनेवाला।

बोल्शेविज़्म

इसकी भूमिका श्रीमान् बाबू भगवानदासजी ... लिखी है। वे लिखते हैं "ग्रन्थ को आद्योपान्त देखा और देखकर प्रसन्न हुआ। ऐसे विषय का ज्ञान भारतवर्ष के उद्धार में श्रम करनेवालों के लिये बहुत उपयोगी किं वा आवश्यक है" इसमें शुरु में रूस के ज़ार का अन्त कैसे हुवा, प्रजा के हाथ में राज्य कैसे आया; फौज और पुलिस प्रजामें कैसे मिलगई इत्यादि बातों का वर्णन करके बोल्शेविज़म के आचार्य लैनिन के सिद्धान्तों का वर्णन उसकी उत्पत्ति और इस समय की वहाँ की राज्य व्यवस्था का वर्णन किया गया है। भारतमें बोल्शेविज़्म आवेगा या नही इसपर खूब विवेचन किया है जो पढने योग्य है।

सचित्र मूल्य १।≈)

मिलने का पता—हिन्दी साहित्य मन्दिर, इन्दौर।

हैं; एक बात और है। जो प्रदेश किसी प्रमुख सभ्यता कुछ काल तक केन्द्र रहता है उसमे कुछ विशेषता है। उसमें उन्नतिके बीज शीघ्र उगते हैं। यही कारण है कि स्वदेशी और असहयोग आन्दोलनके सम्बन्धमें पूर्व बङ्ग सारे बङ्गाल प्रान्तका नेता रहा है। राष्ट्रीयता को बङ्गाल भरमें ऐसी उपयुक्त भूमि नहीं मिलती।

इसी विक्रमपुर परगनेके तेलीरबाग नामक एक गाँवमें दास वंशका पैतृक निवासस्थान था। यह वर्णतः वैद्य हैं चित्तरञ्जनके दादा जगद्बन्धुदास विक्रमपुरमें मुख्तारी करते थे। उनकी आय अच्छी थी पर वह इतने दानशील मनुष्य थे कि अधिक अर्थ-सञ्चय न कर सके। अपने गाँवमे उन्होंने एक अतिथिशाला खोल रक्खी थी जिसमें तत्रागन्तुकोंको खाना मिलता था। वह विद्योत्साही और सुकवि भी थे। उनकी रचित 'नारायण सेवा' और 'हरिर लूटेर पूँथि' का पूर्व बङ्गालमें अब भी अच्छा आदर है। वह निष्ठावान् वैष्णव थे और ब्राह्मणोंके प्रति बड़ा श्रद्धा रखते थे।

उनके एक ही पुत्र थे—भुवनमोहन दास। यही चित्तरञ्जनके पिता थे। यह कलकत्ता हाईकोर्टके एक सुप्रख्यात ऍटोर्नी थे और कलकत्तेमें ही रहते थे। इनकी प्रतिमाको सभी जानते

सकता है। इनकी निर्भय और तीव्र आलोचनाओं का लोहा हाईकोर्टके बड़े बड़े जज मानते थे।

यह वैष्णव धर्म्म त्याग कर ब्रह्मसमाजमें दीक्षित हुए थे। योग्य मनुष्य सर्वत्र ही ख्याति लाभ करता है। ब्रह्म समाज में भी भुवन मोहन बाबूने बहुत कीर्त्ति पायी। वह उसके तत्कालीन उपदेशकों और नेताओं में गिने जाते थे। कुछ कालतक उन्होंने "Brahmo Public Opinion" नामक पत्रका सम्पादन किया। यह पत्र उन दिनों ब्रह्म समाजका मुख-पत्र हो गया था।

परन्तु यह केवल ब्रह्म सामाजिक बातों में ही अभिरुचि नहीं रखते थे, सार्वजनिक हितोंका भी ध्यान रखते थे। "Brahmo Public Opinion"के पीछे यह"Bengal Public Opinion"नामक पत्रका सम्पादन करने लगे। उसमें सर्कार और उसके कर्म्मचारियोंकी बड़ी निर्भीक आलोचना की जाती थी। एकबार इन्होंने हाईकोर्टके एक जज पर कुछ कटाक्ष किया था। अकस्मात् दो चार दिन पीछे उसी जजके सामने एक अभियोग आया जिसमें एक पक्षके वकील यह थे। जज इनसे रुष्ट तो था ही, जब बहस करने खड़े हुए तो वह अन्य-मनस्क सा होकर बैठ गया। इन्होंने देखा कि इससे मुवक्किल को, जिसके लिये नीचेके न्यायालय से फांसी की आज्ञा हो चुकी थी, अपरिहार्य्य क्षति होगी। बस जजको सम्बोधन करके बोले "यदि न्यायाधीश मुझसे किसी कारण क्रुद्ध हों तो कोई आपत्ति नहीं है पर मुझे आशा है कि इस कारण से

इँग्लैण्डमें—

बी॰ ए॰ पास करके चित्तरञ्जन इँग्लैण्ड गये। पिताकी यह आकांक्षा थी कि यदि लडका सिविलियन लौटे तो अपने कुलकी प्रतिष्ठा भी बढे और धीरे-धीरे भार मोचन भी हो। अतः लण्डन जाकर इन्होंने सर्विसके लिये तय्यारी आरम्भ की और साथ-साथ कानून पढ़ने लगे।

सिविल सर्विस और कानूनकी पढ़ाई तो बहुत लोग करते हैं पर पठदशामें ही सार्वजनिक आन्दोलनोंमें भाग लेना सबका काम नहीं है। कमसे कम उस समयके लिये यह एक अत्यन्त असाधारण बात थी पर यह हैं भी असाधारण मनुष्य। उन दिनों भारतीय राजनैतिक आन्दोलनके जन्मदाता स्वर्गीय दादाभाई नौरोजी ब्रिटिश पार्लिमेण्टके सदस्य बननेका प्रयत्न कर रहे थे। चित्तरञ्जन सिविल सर्विसकी परीक्षा दे चुके थे परन्तु फल अभी नहीं निकला था। इन्होंने नौरोजीकी ओरसे घूमघूम कर व्याख्यान देना आरम्भ किया। इस कारण विलायत और भारतके शिक्षित समाजमें इनकी अच्छी प्रशंसा हुई।

उन्ही दिनों मि० मैल्कोन नामक एक सज्जनने पार्लिमेण्टमें भाषण देते हुए कहा कि भारतीय हिन्दू मुसलमान गुलाम और गुलामोंकी सन्तान हैं और अंग्रेज़ोंके दास हैं। यदि सच पूछा जाय तो बात एक प्रकारसे ठीक है। यदि हम गुलाम न होते, यदि हमारी रगोंमें दासत्व कलुषित रक्त न बहता होता तो आज मुट्ठी भर विदेशी हमपर शासन करते ही कैसे ? हमारे दास, निर्लज्ज दास, होनेमें सन्देह ही क्या है ?

परन्तु सच्ची बातके, कहनेका भी ढङ्ग होता है। 'न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।' कई बातें ऐसी होती हैं कि सच्ची होते हुए भी बाहरियोंके मुँहसे बुरी लगती हैं। चित्तरञ्जन मैल्कोनके इस भाषणको न सह सके। उन्होंने आन्दोलन खड़ा किया। एग्ज़ेटर हॉलमें एक सभा हुई जिसमें वक्तृता देते हुए, चित्तरञ्जनने मैल्कोनके इस कथनकी धज्जियाँ उड़ादी। उदार दलके नेता, प्रसिद्ध नीतिज्ञ ग्लैड्स्टनने भारतीयोंके साथ सहानुभूति दिखलायी। परिणाम यह हुआ कि मैल्कोनको अपने वाक्यके लिये खेद प्रकट करना पडा पर इतनेसे ही उनकी छुट्टी न हुई। उनको पार्लिमेण्टसे पदत्याग करके अपने सार्वजनिक जीवनको ही तिलाञ्जलि देनी पडी।

अस्तु, इतनेमें सिविलसर्विस परीक्षाका फल निकला। चित्तरञ्जन उत्तीर्ण हुए परन्तु उनको नौकरी न मिली। इसका रहस्य यह है कि जितने लोग पास होते हैं उन सबको नौकरी नही मिलती। सरकारके यहाँ जितने स्थान खाली होते हैं उतने लोगोंको ही जगह मिलती है। नौकरी न मिलनेवालोंमें

इनका नाम सबसे ऊपर था। इसीसे यह बहुधा कहा करते थे—"I came out first in the unsuccessful list" अर्थात् "मैं अनुत्तीर्णों में प्रथम हुआ।"

इस बातसे इनके पिताको बड़ा कष्ट हुआ। यद्यपि यह वारिस्टरी पास हो गये थे पर वारिस्टरीमें वर्षों तक प्रतीक्षा करने पर अच्छी आय होती है। किसी किसीकी वारिस्टरी चलती ही नहीं। पर अब उपाय ही क्या था? राजसेवाकी आशा छोड़कर चित्तरञ्जन घर लौट आये।

गृहस्थ जीवन, स्वभाव, धार्मिक तथा सामाजिक विचार।

मनुष्यका गृह्य जीवन—उसकी प्रकृति, उसके कुटुम्बियोंके स्वभाव और उसकी आर्थिक अवस्था पर निर्भर है। यदि इन तीनोंमेंसे एक भी सन्तोषजनक न हुआ, तो जीवन दुःखमय होगा। सुखी गृह्य जीवनका एक अङ्ग और है—घर पर रोग और मृत्युकी निरन्तर कृपा न होना। यह अङ्ग स्यात् शेष तीनोंसे प्रबल है।

चित्तरञ्जन संवत् १९५० (सन् १८९३) में विलायतसे लौटे बारिस्टर को अपनी दुकान जमानेके लिये बहुत कुछ दिखावा करना पड़ता है, बड़ी सजधजसे रहना पड़ता है, पर इनके पास उपयुक्त साधन न था। इनके आत्मीय श्री सुकुमार रञ्जनदास गुप्तने इनकी जीवनीमें लिखा है "किन्तु चित्तरञ्जनेर अर्थेर अस्वश्वलता खूब बेशीई छिल, दूबेला ना कि समीन पुष्टिकर सुखाद्य संगृहीत हइते पारितना" अर्थात् "किन्तु चित्तरञ्जन की आर्थिक दूरावस्था खूब ज्यादा थी, दोनो वेला पुष्टिकर भोजन भी नहीं मिल सकता था।" यह अवस्था न्यूनाधिक रूप से पन्द्रह वर्षों तक चली गयी।

उनके सिर पर ऋणका बोझ था। चित्तरञ्जन को भी पिताके साथ अपना नाम दिवालियोंमें लिखवाना पड़ाथा क्योंकि जिसके पास शामतक का ठिकाना न हो वह ४०,०००) कहाँ से देता। पर हाँ, चिन्ता लगी रहती थी।

यह अपने पिताके ज्येष्ठ पुत्र थे। इनके दो छोटे भाई और पाँच बहिनें थीं। उनके भरण पोषण और शिक्षाका भार भी इन पर ही पड़ा। इन्होंने दोनों भाइयोंको विलायत भेज कर बारिस्टरी पास कराया। मझले भाई प्रफुल्लरञ्जन दास आजकल पटना हाईकोर्टके जज हैं। यह अंग्रेज़ी साहित्यके मर्मज्ञ और कवि हैं। कनिष्ठ भ्राता वसन्तरञ्जनकी बारिस्टरी चल निकली थी पर यह पूज्य माता पिताके सामने अल्प वयमें ही परलोक-गामी हो गये। बड़ी बहन थोड़ा उम्रमें ही विधवा हो गयीं। उनके बच्चोंका भार भी इन पर आ पड़ा। दो और विधवा बहिनें हैं।

एक बहिन अमलादास गुप्ता की मृत्यु हो गयी। वह गान विद्यामें बड़ी निपुण थीं। कलकत्ता कांग्रेसमें उनके मुखसे वन्दे मातरम् का गान सुनकर श्रोतागण चमत्कृत हो गये थे। कांग्रेसके पीछे पीछे उन्होंने पुरुलियामें अनाथों और आतुरोंके लिये एक आश्रम खोला। उसमें प्रधान आर्थिक सहायता

है। पहिले माता मरी, फिर उनके छही महीने पीछे वृद्ध पिता भी पञ्चत्व को प्राप्त हुए।

इन सब पारिवारिक सन्तापोंके सहनेमें इनका पत्नी वासन्तीदेवीसे इनको बड़ी सहायता मिली है। यह वस्तुतः पतिकी सहधर्म्मिणी हैं। इन्होंने विश्वविद्यालयसे कोई उपाधि तो नही प्राप्तकी है पर साहित्यकी मर्मज्ञा हैं। बँगलाके अतिरिक्त संस्कृत और अँग्रेज़ी साहित्यसे भी परिचय रखती हैं। साहित्य-चर्चामें पतिकी सहचारिणी और देशव्रतमें अनुगामिनी हैं। इनका स्वभाव बहुत ही सरल और लोकप्रिय है। इनको वेषभूषाकी सजावट पसन्द नही है। इनका अधिकांश जीवन गृह कार्य्यों और गुप्त लोकसेवामें बीता है। पर संवत् १६७६ (सन् १६१६) में अमृतसरकी निखिल भारतीय महिला परिषद्की सभानेत्रीका पद इनका ही ग्रहण करना पडा। इनको बडी सभाओंमें भाषण करनेका अभ्यास न था, फिर भी इनकी वक्तृता बहुत ही रोचक और शिक्षाप्रद हुई। इन्होंने उसमें जो उपदेश दिया उसका निष्कर्ष इस वाक्यसे निकलता है। "मने राखिबेन, आमादिगेर आदर्श सती, सावित्री ओ सीता। यदि प्रयोजन मने हे ताहा होइले वर्तमान् काले-काले उपयोगी करिया लइवार जन्य सेई भारतीय आदर्शके संस्कार करिया लऊन, किन्तु सेई भारतेर चिरन्तन आदर्शके नष्ट करिते चेष्टा करिबेन ना" अर्थात् "स्मरण रखिये, हम लोगोंकी आदर्श सती, सावित्री और सीता हैं। यदि प्रयोजन जान पड़े तो उस भारतीय आदर्शका संस्कार करके उसे आजकलके लिये

बना लीजिये, परन्तु भारतके उस चिरन्तन आदर्शका नष्ट करनेकी चेष्टा न कीजियेगा।"

परोपकार और दानशीलता इनका पैतृक गुण है। इनका बड़ासे बड़ा शत्रु भी इस बातको मानेगा कि इन्होंने कभी धन सञ्चय को अपना लक्ष्य नहीं बनाया। विलायतसे लौटने पर अङ्गरेज़ी ढङ्ग से रहने सहनेका कुछ व्यसन होगया था इसलिये कुछ ऐसा व्यय भी होताथा जो अनावश्यक कहा जा सकता है परन्तु इनकी प्रभूत आयका बड़ा अंश परदुःखनिवारण में ही लगताथा। इनके चाचा दुर्गामोहन दास अपने समयके सुप्रख्यात दानवीर थे। उन्होंने कलकत्तेके सिटी कॉलेज की स्थापनाके समय प्रचुर धन दिया था, स्त्रीशिक्षा के निमित्त ब्राह्म बालिका शिक्षालय स्थापित किया था और तेलीरबाग ग्राम में अङ्गरेजी का हाईस्कूल खोलाथा। इसके अतिरिक्त उन्होंने और भी कई सार्वजनिक संस्थाओं की बड़ी सहायताकी थी। इनके पिता श्री भुवनमोहन दास की उदारता का उल्लेख पहिले ही होचुका है। दूसरोंको सहायता करनेके कारण ही वह ऋणी और देवालिया होगये। ऐसे गुरुजनों की गोदमें पलकर चित्तरञ्जन का दानशील न होना आश्चर्यजनक होता।

उनका दान उनकी विपुल आयके अनुरूप था। परन्तु उसका बहुत बड़ा अंश गुप्त रूप से दिया जाताथा। इतना सब जानते थे कि यह दान बहुत करते हैं पर इनके दानदेने को बहुधा इनके घरवाले भी न जानते थे। कभी कभी अकस्मात् बात खुलजाती थी। न जाने कितने विद्यार्थियोंके भरण पोषण

का प्रबन्ध इन्होंने किया है। विद्योन्नतिकारी सभी संस्थाओंसे इनको सहानुभूति थी। ब्रह्मबालिका शिक्षालय, बेलगाछिया मेडिकल कालेज, बङ्ग-साहित्य-सम्मेलन तथा इस प्रकारकी अनेक अन्य संस्थाओंको समय समय पर इनसे सहायता मिली है।

पुरुलिया के अनाथालयका जिसकी सेवामें इनकी बहिन स्वर्गीया कुमारी अमलाने अपने प्राण ही न्योछावर कर दिये, कथन पूर्व ही हो चुका है। वह इनके पुरुलियास्थ घरमें स्थापित था। उसके लिये यह २०००) (दो सहस्र रुपये) प्रति मास व्यय करते थे। बहुतसे लङ्गड़े, लूले, अन्धे, अपाहिज अनाथ, उसमें पलते थे। आतुरोंपर इनकी सदासे सदय दृष्टि रही है। नवद्वीप (नदिया) के नित्यानन्द आश्रमको, जिसमें बहुतसे अनाथ आश्रय पाते थे एकबार दो लाखका गुप्तदान दिया था। इसके बहुत दिनों पीछे कलकत्तेके थियासाँफिक कालेजमें भाषण करते हुए आश्रम व्यवस्थापक पं० कुलदा प्रसाद मल्लिक भगवतरत्नने यह भेद खोला। इसके अतिरिक्त इन्होंने भवानीपुरमे भी एक अनाथ आश्रम खोला है।

अंग्रेज़ी राज्यमें अनावृष्टि, अतिवृष्टि आदि इतियोंका आये दिन प्रकोप बना रहता है। कारणोंके अनेक रूप हैं परन्तु परिणाम एक ही होता है—प्रजाको कष्ट। कभी कभी यह कष्ट व्यापक होकर सारे देशको बृहत् स्मशान बना देता है पर ऐसा तो कोई वर्ष ही नहीं बीतता जिसमें किसी न किसी टुकड़े में दुर्भिक्ष या किसी संक्रामक रोगका वेग न होता हो।

इस दुरावस्था की पूरी २ रोक थाम्ह्ता तभी हो सकती है जब शासनकी डोर अपने हाथमें हो। पर आपत्तिके आसन्न होने पर कुछ न कुछ करना ही पड़ता है। धनी लोग धन देते हैं, उत्साही लोग शरीरसे सेवा करते हैं। अभी दो वर्ष हुए, जब पूर्व बङ्गालमें भीषण दुष्काल पड़ा था तो चित्तरञ्जनने दस सहस्र रुपये चन्देमें दिये और घूम घूम कर चन्दा एकत्र किया। स्वयं इनके लड़के लडकियाँ चन्दे को भिक्षा माँगती फिरती थी।

यों तो निर्धनता किसी की हो बुरी होती है पर मध्यम श्रेणीवालों की निर्धनता बड़ी ही सन्तापकारिणी होती है। वे न तो भीख मांग सकते हैं न मज़दूरी कर सकते हैं। यों ही तड़प तड़पकर मर जाते हैं। मध्यम श्रेणीवालोंमें भी गुणिजनका दारिद्र तो महा भयावह वस्तु है। लक्ष्मी सरस्वतीका पुराना बैर है। कभी कभी अल्पकालीन सन्धि हो जाती है और कोई विद्वान् धनी तथा धनिक विद्वान् हो जाता है पर ऐसा कम ही होता है। प्रायः विद्वान्, विशेषतः कविजन् लक्ष्मीके कृपाकटाक्षके लिये तरसते ही रहते हैं। इनके पास यह सौदा होता है जिसके ग्राहक थोड़े ही हैं। ऐसे लोगोंकी सहायता करना भगवती सरस्वतीकी सच्ची उपासना है पर सच्चे उपासक बहुत ही थोड़े हैं. भक्त ही भक्तको पहिचानता है, गुणी ही गुणीको जानता है। अनाड़ी रत्नकी परख नहीं कर सकता, अरसज्ञ दग्ध हृदय काव्यका रसपान नहीं कर सकते।

इन्होंने साहित्यिकोंकी समय-समय पर अमूल्य सहायता की है। इनका यह दान गोप्त रूपमें इनके अन्य दानोंसे कई

अंशोंमें श्रेष्ठतर है। पण्डितवर उमेशचन्द्र विद्यारत्न तथा पण्डित सुरेशचन्द्र समाजपतिको इन्होंने ही आश्रय प्रदान किया। जिस समय प्रसिद्ध मासिकपत्र 'साहित्य' ऋणभारसे दबकर बन्द होनेवाला था उस समय इन्होंने उसको ऋणमुक्त करके फिरसे साहित्यसेवा मार्गपर खड़ा किया।

स्वर्गीय गोविन्दचन्द्र दास पूर्व बङ्गालके प्रतिभाशाली कवि थे परन्तु दुर्दैवको उनसे कुछ विशेष स्नेह था। उनका इतना निरादर हुआ कि ढाकाके बङ्गसाहित्य सम्मेलनमें प्रवेश करनेका अधिकारतक नहीं मिला ; उधर धनाभाव इतना था कि सचमुच वे भूखों मररहे थे। उन्होंने अपना हृदयोद्गार जिन बँगला शब्दोंमें प्रकट किया है वह उद्धृत करने योग्य हैं। अर्थ अनायास ही समझमें आजाता है।

ओ भाइ बङ्गवासी।
आमि मोले तोमरा आमार चिताय दिये मठ।
आज जे आमि उपोष करी,
ना खेये पराने मरी, (मोले—मरनेपर)
हाहाकारे दिवानिशि क्षुधाय करी छटपट॥

भाग्यकी बात है। इतने पर भी पहिले कोई इनकी सहायता करने पर तत्पर नहीं हुआ। यदि हुआ तो एक व्यक्ति चित्तरञ्जन और वह भी इस प्रकार कि दानमें दाताके अहंभावका पता न चले।

इनका जीवन लक्ष्य इनकी ही निम्नलिखित कवितासे प्रकट हो जायगा।

अपरेर दुःख ज्वाला हँबे मिटाइते,
हासि आवरन टानि दुःख भूले जाओ

*   *   *

आपना राखिले व्यर्थ जीवन-साधना
जनम विश्वेर तरे—परार्थ कामना।

मनुष्यके स्वभाव पर उसके धार्म्मिक विचारोंका बड़ा प्रभाव पड़ता है। यों तो ऐसे लोग भी हैं जो किसी धर्म्म विशेष किसी मत मतान्तरके अनुयायी नही होते परन्तु अपने उज्ज्वल चरित्रसे बड़े बडे धर्म्माचार्य्योंको विलज्जित करते हैं पर ऐसी ऐसी प्रवल आत्माएँ बहुत थोडी होती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि सच्चरित्रताको धार्म्मिकतासे बल मिलता है और सच्चरित्र धर्म्म पादपका सुरभि पुष्प है।

चित्तरञ्जनके दादा, जैसा कि हम पहिले लिख आये हैं सनातन धर्म्मावलम्बी थे परन्तु इनके पिता ब्रह्मसमाजी हो गये थे। इनकी माता सनातन धर्म्मावलम्बिनी ही थी। कहते हैं कि मरते समय वह इनको कुछ धर्म्मोपदेश दे गयीं जिसका इनपर बड़ा प्रभाव पड़ा। पिताकी मृत्युके उपरान्त इन्होंने ब्रह्मसमाजसे अपना नाम कटवा लिया और फिर प्राचीन धर्म्मकी शरण आये। यह वैष्णव सम्प्रदायके उपासक हो गये। विष्णु प्रतिमा की पूजा करने लगे। इनके धार्म्मिक भावोंका प्रभाव उनकी साहित्यिक रचनाओं पर पड़ा है। इसका वर्णन आगे अध्याय में होगा।

आर्य्य जनता धर्म्म और समाज को भिन्न नहीं मानती।

हमारा यह सनातन सिद्धान्त है कि समाज को धर्म्मानुमोदित नियमोंके ही अनुकूल चलाना चाहिये। यदि सामाजिक नियम मनुष्यों की उच्छृङ्खल प्रवृत्तियोंपर ही निर्भर हों तो उनमें घोर अस्थिरता आजाय। बुद्धि भी निरपेक्ष पथ-प्रदर्शक नहीं हो सकती। इसीलिये धर्म्मके सनातन सिद्धान्त ही सामाजिक समस्याओं के सुलझानेमें चरम प्रमाण माने जाते हैं। पर आजकल एक अड़चन पड़गयी है। धर्म्माचार्य्यों में ही मतभेद होगया है। धर्म्म की व्याख्या भिन्न भिन्न प्रकारसे की जा रही है। इस व्याख्या भेदका प्रभाव सामाजिक क्षेत्रमें प्रचण्ड रूपसे पड़ता है। एक पक्ष कहता है कि सनातन धर्म्म जन्मसे वर्ण मानता है, तथा छूत अछूतके भेदको अमिट बतलाता है। इस पक्षके अनुसार समुद्रयात्रा, विधवा-विवाह, वर्णान्तर-विवाह आदि सभी निषिद्ध हैं। दूसरा पक्ष कहता है कि सनातन धर्म्म इतना उदार है कि वह मनुष्य मनुष्यमें भेद करना जानता ही नहीं। आजकल जो कुछ भेद भाव देख पड़ता है पीछेसे आगया है और उसके कारण सनातन धर्म्म का कलेवर दूषित हो रहा है।

विचार भी इसी पक्षका समर्थन करता है। यह ठीक है कि सब मनुष्य तुल्य गुणशीलवाले नहीं हैं। पर इस प्राकृतिक तथ्यके कारण हम मनुष्योंको पृथक-पृथक वर्णों में नहीं बाँट सकते? क्या सब ब्राह्मण नामधारी एकसे ही होते हैं? किसी मनुष्यका स्वरूप कितना ही कुरूप हो, उसकी वृत्ति कितनी ही निन्दनीय हो, उसका आचरण कितना ही घृणित हो, पर यह

मनुष्य ही है। जो लोग इस बातको मानते हैं कि मनुष्ययोनि अन्य सब योनियोंसे श्रेष्ठ है वह कभी किसी मनुष्यको किसी पशुसे नीचा नहीं मान सकते। पर आजकल हम हिन्दुओंमें कुछ ऐसा बुद्धि विपर्य्यय हुआ है कि हम लाखों मनुष्योंको कुत्ते बिल्लियोंसे भी निकृष्ट समझते हैं। घोड़ा पवित्र है पर उसका चमार साईस अपवित्र है; यह हमारी उत्कृष्ट बुद्धि का एक उज्ज्वल उदाहरण है।

चित्तरञ्जन सनातन धर्म्मावलम्बी होते हुए भी वर्ण भेदको नहीं मानते। इनका विश्वास है कि यह जन्मानुगत वर्णभेद सनातन धर्म्मका तात्विक सिद्धान्त नहीं है। इनकी पत्नी वासन्तीदेवी ब्राह्मण कुलोत्पन्ना हैं। इनके दो कन्या और एक पुत्र है। ज्येष्ठ कन्या का विवाह कायस्थ वरके साथ हुआ है और पुत्र वधु वैश्यकुल की लड़की हैं। कन्योद्वाह के समय इनकी इच्छा थी कि ब्राह्मण पुरोहित न बुलाया जाय क्योंकि जब वर्णभेद मानना ही नहीं है तो जो कोई साक्षर है वही पुरोहित हो सकता है। वासन्तीदेवीने इस प्रस्तावका विरोध किया। उनका कहना था कि सामाजिक नियमोंको एक साथ ही तोड़ देना अच्छा नहीं है। अन्तमें उनका ही कहना स्वीकार हुआ। आन्दोलन तो बहुत मचा परन्तु विवाह बड़े समारोहसे हुआ। कलकत्तेके महामहोपाध्याय हरप्रसादशास्त्री महामहोपाध्याय डा० सतीशचन्द्र विद्याभूषण तथा काशीके महामहोपाध्याय पं० यादवेश्वर तर्करत्न ऐसे पण्डितोंने योगदान किया।
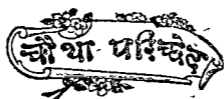
साहित्य चर्चा।

किसी दूसरी भाषाके साहित्य की आलोचना करना बड़ा ही कठिन काम है। विशेषतः पद्यात्मक वाङ्मयपर यथार्थ और निष्पक्ष विचार करना और भी कठिन है। यह विषय बुद्धि सापेक्ष है। इसमें सरसता, सहृदयता भावुकता, कल्पना, संवेदनशीलता तथा अनुभवका एक विचित्र संयोग है, ऐतिहासिक, ज्यौतिष तथा व्यापारिक तथ्योंके विषयमें कहीं विवादका स्थल ही नहीं है। यह तथ्य सिद्धान्तस्वरूपी होते हैं। इनका सर्वतंत्रसम्मत होना अनिवार्य्य है। या तो पृथिवी सूर्य्यकी परिक्रमा करती है या नहीं करती—बस दो ही बातें हो सकती हैं। यहां सदसत् वादके लिये कोई स्थान ही नहीं है। दो और दोको चार न मानना पागलपनका सूचक है।

परन्तु सौन्दर्य्यजगत्में, जो कविप्रासादका प्राङ्गण है, यह नियम नहीं चलता। एक ही दृग्विषय भिन्न भिन्न कवियोंको भिन्न भिन्न उपदेश देता है। उसी वस्तुको एक कवि सौन्दर्य्य की पराकाष्ठा और दूसरा कवि भद्देपनकी चलमूर्ति मान सकता है। वही नीलाम्बरविहारी रोहिणीवल्लभ जो संयोगिनी को आह्लाद कर प्रतीत होता है वियोगिनीके हृदयको

सन्तप्त करता है। इसीलिये इस साम्राज्यमें नित्य कलह रहता है। आलोचकों और प्रत्यालोचकोंके मल्लयुद्धसे कभी कविका मन रणस्थल बन जाता है। पर यह प्रतियोगिता भी न कुछ लाभ ही पहुंचाती है। जहाँ रसके गलेपर छुरी जाती है वहाँ काव्याम्बुनिधिके सतत मन्थनसे कई अमूल्य का आविष्कार भी होता रहता है।

चित्तरञ्जन बंगलाके अच्छे कवि हैं। इन्होंने 'माल 'वारविलासिनी', 'अन्तर्यामी', आदि काव्यपुस्तकें समय सम पर प्रकाशित की हैं। इनसे इनकी स्वाभाविकता, प्रति तथा सहृदयता का बहुत ही अच्छा परिचय मिलता है। बङ्गा में ऐसे बहुत से लोग हैं जिनका यह कहना है कि इनकी रचना ओंका स्थान रवीन्द्रनाथकी रचनाओंसे भी ऊँचा है। इस निर्णय करना बहुत ही कठिन है। निष्पक्ष निर्णय आजसे सौ पचास वर्ष पीछे होगा, जब दोनों कवि यशः काय मात्रावशि रह जायेंगे। जब हिन्दी संसार देव और बिहारीके आपेक्षि उत्कर्षका आजतक निर्णय न कर सका तो दो जीवित कवियों प्रेमियोंमें विवादका उठना एक अत्यन्त साधारण बात है। मैं स्वयं हिन्दी भाषी हूँ। मेरा इस विवादमें कोई भी पक्ष दुःसाहस मात्र होगा। अतः मैं पाठकोंको अपने चरित न की कविताके कुछ उदाहरण देकर ही सन्तुष्ट हूँगा। अनुवाद करनेका विफल प्रयत्न नहीं किया है। भाषा बँगला हुए भी इतनी सरल है कि अर्थ सहज ही समझ जाता है।

प्रेमी हृदयमें भिन्न भिन्न समयों पर जो उद्गार उठते हैं उनका निम्नाङ्कित पद्योंमें बड़े ही ललित शब्दोंमें वर्णन है।

तोमार ओ प्रेम सखि, शानित कृपाण।
दिवानिशि करितेछे हृदि रक्त पान।
नित्य नव सुख भरे,
झलसिछे रविकरे,
रजनीर अन्धकारे से आलो निर्व्वाण।
(आलो = दीपक, प्रकाश)
तोमार ओ प्रेम सखि, मरन समान।
जीर्ण श्रान्त जीवनेर शान्ति आवरन।
कोमल तुषार कर,
राखिया ललाट पर,
जुड़ाय ज्वलन्त ज्वाला, आनिया निर्व्वान!

पवित्र प्रेम क्या वस्तु है यह प्रेमी हृदयही जान सकता है। सामान्य स्त्री पुरुष प्रेमाभाससे ही सन्तुष्ट रहते हैं। प्रेमके अधिकारी थोड़ेही हैं जैसा कि फ़ारसीके प्रसिद्ध दार्शनिक कवि 'सर्मद'ने कहा है, "सोज़े दिले परवाना मगसरा न दिहन्द" ईश्वर ने मक्खीके हृदयमें वह भाव उत्पन्नही नहीं किया है जिससे प्रेरित होकर पतङ्ग अपने प्राणोंको दीपशिखापर न्योछावर कर देता है। जो प्रेमी होंगे उनको ही ऊपर की हर्षसन्तापयुक्त पङ्क्तियोंका स्वाद मिलेगा। 'वारविलासिनी'में एक पतिता स्त्रीकी करुण कथा वर्णित है। यह वर्णन हृदय-द्रावक है। ऐसी स्त्रियों का अस्तित्व मानव समाजका मस्तक नत करता है। पुरुषोंके

पुरुषत्व को, स्त्रियों को स्त्रीत्वको लज्जित करता है। इन अभागिनियों का जीवन सुखमय नहीं है। अदूरदर्शी लोग इनके वेषभूषा, शृङ्गारविलास आदिको तो देखते हैं पर इनकी मानसिक व्यथा का पता कोई विरला मनुष्य ही पाता है। यह कौन जानता है कि इनका कोकिलकण्ठ-विलज्जक कलगान इनके चिरोत्थ करुण क्रन्दनका आवरण मात्र है; यह किसे पता है कि इनका प्रणयि हृदय शीतलकर अधरामृत इनके सन्तप्त हृदयों का उदार वाष्प मात्र है। अपने हृद्वेगोंको छिपाकर संसारके सामने प्रतिदिन चिरस्मय विकसित वदनारविन्द दिखलाना हंसी खेल नहीं है। यह बातें वेश्याओंके लिये ही लागू नहीं हैं। कुलाङ्गना नामधारी वारिविलासिनियोंके जीवन और भी दुःखमय होते हैं। कुलगौरव, लोकलज्जा, पश्चात्तापके भाव रह रह कर उनके हृदयोंको क्षुब्ध और व्यथित करते हैं। कभी न कभी सबके ही हृदयमें वैसे भाव उठते हैं जिनको चित्तरञ्जनने नीचे दिये मर्मस्पर्शी शब्दोंमें व्यक्त किया है :

आमि जेनो चिरदिन प्रणी।
अपार ऐश्वर्य लये,
विलाई भिखारी हये,
वासना विहीन उदासिनी।
लालसा लालसाहीन, पूर्ण उदासिनी।
के करेछे मोरे चिर प्रणी,
योगी आमि यौवने योगिनी।

ए विश्व लालसा छाइ,
सर्वाङ्गे माखिया ताइ, (माखिया = लेपन करके)
चलियाछि कलङ्क वाहिनी।
चिरदिन यौवने योगिनी।
कार अभिशापे नाहि जानि।
कोन् महाप्राणे व्यथा,
दियाछिनु तार हेया,
प्राणहीन प्रेम विलासिनी।
सवारे विलासि ताइ वारि विलासिनी।
तारियाशे चिर-कलङ्किनी।

आजकल छद्मवेषी साधु नामधारियोंकी संख्या बढ़ती ही जाती है। कहनेको इन लोगोंने संसारका सुख त्याग दिया है और—

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः, सुखेषुविगतस्पृहः।
वीतराग भयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥

का पाठ हृदयङ्गम कर लिया है पर यह प्रायः दिखावा मात्र है। सच्चा साधु लाखोंमें कोई एकाध ही होता है, शेष रंगे स्यार हैं जो स्वयं भाँतिभाँतिकी लोभ लालसाओंमें डूबते हुए भी पूज्य व्यक्तियोंका स्वांग रचकर श्रद्धालु लोगोंके सम्मान-भाजन बन रहे हैं। ऐसे लोगोंको लक्ष्य करके ही यह पद्य बनाया गया है :—

ओहे साधु, आमि जानि अन्तर तोमार,
क्षुधित तृषित सदा यश लालसाय;

एश एश काछे लये मानवेर प्रान,
काजकि ए मिथ्याभरा देवतार भान।
(एश =आयो ; काछे= पासमें)

ऐसे बहुतसे मनुष्य हैं जो इस शिक्षाको भूल जाते हैं कि लोकसेवा ईश्वरसेवाका एक परम आवश्यक अङ्ग हैं। षोड़पोपचार पूजामें घण्टों विता देंगे, यज्ञ यागमें सहस्रों रुपये लगा देंगे परन्तु पड़ोसमें ही कोई अनाथ रोगी सिसक सिसक कर मर जाय, उसकी शुश्रुषा न करेंगे। ऐसे लोगोंने नररूपी नारायण को नहीं पहिचाना। उनको यह नहीं ज्ञात है कि :—

येन केन प्रकारेण, यस्य कस्यापि जन्तुनः।
सन्तोषं जनयेद्धीमान्, स्तदेवेश्वर पूजनम्॥

ऐसे लोगोंको सम्बोधन करके कविने नीचेके तीखे कटु परन्तु अक्षरशः सत्य वाक्य लिखे हैं :—

तुमि उच्च हते उच्च, धार्मिक प्रवर।
तुच्छ करि अति तुच्छ आमादेर प्रान्,
ओगो! कोन् शून्य हते आनिया ईश्वर,
जीवने ताहारि कर आरतीर गान ?
भ्रातार क्रन्दन शुनि चेयोना फिरिया,
धरनीर दुःख दैन्य आछे जाद थाक्,
ऊर्ध्वमुखे पूजा कर देवता गड़िया,
प्राणपुण्य अयतने शुखाइया जाक्।
(चेयोना=नहीं देखते, थाक्=रहे ; जाक्=जाय)

जो लोग ब्रह्मज्ञानी बनकर अहङ्कारमें डूबजाते हैं वह सच्चे

ब्रह्मज्ञानी नहीं हैं। ब्रह्मज्ञान विश्वप्रेम की कुञ्जी है। पर इन वाचक ज्ञानियोंने उसका नाम कलङ्कित कर दिया है। उनके प्रति नीचेकी चेतावनी सर्वथा उपयुक्त है :—

असार सकल ज्ञान। ओहे ब्रह्मज्ञानी
तव तुमि कार कर अत अहङ्कार ?
आपनारि उच्चारित मेघमन्द्र वाणी
आपनार मने आने मोह-अन्धकार।
क्षुद्र तुमि, क्षीण प्राणे केमने धरिबे
असीम अनन्त शक्ति महा देवतार ;
ए शून्य विश्वेर वक्षे काहारे वरिबे ?
वृथा वह आपनार पुण्य-अर्घ्यभार।

(केमने = कैसे ; वह = वहन करते हो, ढोते हो)

कविकी रचनामें उसकी मानसिक दशा प्रतिबिम्बित होती है। शब्दयोजनाके भीतर कविका व्यक्तित्व सम्पुटित होता है। एक समय था जबकि चित्तरञ्जन नास्तिकप्राय होगये थे। विलायतसे लौटकर आयेथे, हृदयमें भाँति भाँतिकी लालसाएं भरी थीं पर आर्थिक दशा ऐसी थी, पारिवारिक चिन्ताएँ ऐसी थीं, कि अस्फुट रूपसे यही वाक्य निकलते थे :—

उत्थाय हृदि लीयन्ते, दरिद्राणाम् मनोरथाः।
बालवैधव्य दग्धानाम्, यथा स्त्रीणाम् पयोधराः॥

कोई सहारा न था, प्रार्थना भी निष्फल प्रतीत होतीथी। ऐसी अवस्थामें धैर्य छूटजाता है; ईश्वरकी प्रातिभासिक निष्ठुरता उसके अस्तित्वमें ही सन्देह उत्पन्न करदेती है ; आशा

निराधार हो जाती है। उस समय जो भाव सहसा उठते हैं उनको चित्तरञ्जनने अपनी "कालज" नामक प्रथम पुस्तकमें एक स्थल पर यों व्यक्त किया है :—

वूझेछि वूझेछि तबे
कहिवना किछु। तृपार्त जिज्ञासा मोर
आनिछे फिराये तव लौहवक्ष हते
रुद्ध भाषा अश्रु सिक्त लज्जानत आँखि।
शक्तिशील, दृष्टि हीन श्रवण हीन,
निर्म्मम निष्ठुर तुमि पाषाणेर मत।
(मत = सदृश)

एक अन्य स्थलपर इन्होंने कहा है "ईश्वर ईश्वर वले अबोध क्रन्दन"

जिस समय इन्होंने 'माला' नामक पुस्तक लिखी उस समय यह भाव न रहे थे। चित्त की चञ्चलता जाती रही थी। ईश्वर की सत्ता और उसकी सदयता पर विश्वास जम गया था। सर्वत्र उसीका यशोगान सुन पड़ता था, उसी की लीला देख पड़ती थी। एक जगह लिखा है।

केमन से भालवासा ? वला कि से जाय ?
सकल जीवन धार सब स्वप्न गाय
तोमारि तोमारि गीत। स्रोतस्वती यथा
समुद्रेर गान गाय; तारि पाने धाय
आकुल आशाय।

(भालवासा = सद्भाव ; स्रोतस्वती (संस्कृत) = नदी)
पान = मुख ।

'किशोर व किशोरी' तथा अन्तर्य्यामीमें कविकी प्रौढ़ प्रतिमा का पूरा आनन्द मिलता है। अन्तःकरण की प्रेममयी शक्तियोंका पूरा विकाश हो चुका है। अब शङ्काके लिये रिक्त स्थान ही नहीं है। अब कविको ईश्वर की सत्ता और सर्वं व्यापकताके लिये तार्किक प्रमाणोंकी आवश्यकता नहीं है, उसकी हृत्तंत्रीका एक एक तार प्रमाण दे रहा है। वह प्रेमके आवेशमें बोल उठता है :—

> ओगो प्रिय, तुमि मोर सर्व जीवनेर
> चिर प्रेमार्जित शत तपस्यार फल।
> खुलिया हृदय द्वार आमि बिछाइब
> यत ना सौन्दर्य्य आछे यत ना स्वपन,
> सर्व कोमलता मोर आमि पेते दिब
> तुमि फेरे ओगो फेरे आमार जीवन।
> तोमार चरणभूमि।

अब धैर्य्य के लिये अवकाश नहीं रहा। प्रेमाका आकुल हृदय विरह वेदनासे व्यथित होकर यही माँगता है कि प्रियतम आकर उसके हृदयमन्दिरमें निरन्तर निवास करे। पर इसके साथ ही अब वह निराश नहीं है। उसको पूर्ण विश्वास है कि संयोग निकट है। वह जानता है कि उसका स्नेहपात्र विश्वात्मा है 'न जाने तस्य' यथमिह तु यस्य' न भवति'

पर उसको यह भी भरोसा है कि 'वह मेरा है।' विश्व उसका है पर, वह मेरा है। उसकी मनोदशा इन शब्दोंमें स्फुट होती है :—

निखिलेर प्राण तुमि। तुमि हे आमार
दिवसेर दिन मणि, निशार आँधार;
जागरणे कर्म्म भूमि
शयनेर स्वप्न तुमि
ओगो सर्व प्राणमय। तुमि जे आमार।

हम एक उदाहरण देकर समाप्त करते हैं। यह अन्तिम पद उपासक की ध्येय प्राप्ति भक्तके भगवद्दर्शन, विरोहिणी की संयोगलब्धिकी हर्षोद्रेक प्रपूरित गीत है।

बाजारे बाजारे तबे बाजा जय डङ्का।
नाहि लाज नाहि भय, नाहि कोन शङ्का।
परान खानि काँपछे कत जय माल्य गले
फूलेर मत कि जानिगो फुट्छे हृदितले।
सुखेर मत दुःख आज, दुःखेर मत सुख
कोन गानेर गरबे गो भरियाछे बुक?
प्राणेर माझे एकि सुनि कि गौरव भाषा।
बुकेर माझे कोन् पाखी गो बाँधियाछे बासा।
पायेर तले बाजे पथ! प्राण आजिके राजा।
बाजारे बाजारे तबे जय डङ्का बाजा।

(बुक = छाती; माझे = में)

इतने उदाहरण पर्य्याप्त हैं। इनसे ही इस बातका अनुमान हो सकता है कि चित्तरञ्जन उच्चकोटिके कवि हैं। मैंने अपने नीरस अनुवादों द्वारा उनकी सरल सरल वाणीमें पैवन्द लगाना उचित नही समझा। वह गद्य लेखक भी हैं। 'नारायण' नामक एक विख्यात मासिक पत्रिकाके, जिसमें विपिनचन्द्र पाल, हरप्रसाद शास्त्री, प्रभृति लेखक लिखा करते थे, सञ्चालक थे पर उनकी अधिकांश साहित्य सेवा पद्य क्षेत्रमें ही हुई है, इस लिये यहा उस पर ही विचार किया गया है।
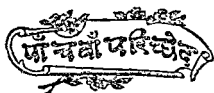
अलीपुर बमका अभियोग ।

अब हम चित्तरञ्जनके सार्वजनिक जीवनकी ओर फिर दृष्टि डालते हैं। यह हम कह चुके हैं कि इनकी वकालत चलती न थी। जो आय होती भी थी वह इतनी न थी कि उससे इन का काम चलजाय। ऋणका बोझ अलग दबाये डालता था। इसीलिये यह किसी सार्वजनिक काममें खुलकर सम्मिलित न होतेथे। परन्तु स्वभाव इनका सदैव ही स्वातंत्र्यप्रेमी और न्यायपरायण था। यह किसीका आतङ्क सहन नहीं कर सकते थे। एकवार यह नोआखालिमें एक अभियुक्तके वकील थे। उस अभियोगमें जिला मजिस्ट्रेट मि० कार्मिल भी साक्ष्य देने आये थे। विचारपतिने उनको जंगलेमें न खड़ाकरके बैठने के लिये कुर्सी दी। जब चित्तरञ्जन जिरह पर जिरह करने लगे तो मजिस्ट्रेट साहब घबराये। उनका पारा गरम होनेलगा। उन्हों ने इनको बाबू कहकर पुकारा। 'बाबू' शब्द स्वतः बुरा नहीं है पर जब अंग्रेज़ लोग भारतीयोंको बाबू कहकर पुकारते हैं तो इस शब्दका प्रयोग अपमानव्यञ्जक ही होता है। चित्त-रञ्जन आग बबूला हो गये। उन्होंने कहा "मि० कार्मिल, जानते हैं कि केवल भद्रताके कारण ही आपको बैठनेका

आसन दिया गया है, नहीं तो मैं आपको इसी क्षण जंगले में खडा करा सकता हूँ। मुझे आशा है कि जैसे आपके साथ सज्जनता का व्यवहार किया गया है वैसे ही आप भी सज्जनता का व्यवहार करेंगे।"

यह सब कुछ था पर अभी तक कोई ऐसा अवसर न आया था जब कि यह अपनी प्रतिभा और गम्भीर विधान ज्ञानका परिचय दे सकते। सं० १९६५ (सन् १९०८) में ऐसा अवसर भी आगया।

इससे तीन वर्ष पहिले लार्ड कर्जनने बङ्ग-विच्छेद करके सारी शिक्षित बंगाली जनताको उत्तेजित कर दिया था। विच्छेद हो जानेपर भी जनता हतोत्साह न हुई। उसको यह आशा बनी हुई थी कि एक दिन सर्कारको अपनी यह कार्य्यवाही पलटनी होगी। अन्तमें हुआ भी ऐसा ही। दिल्ली दर्बारके समय बङ्गालके दोनों टुकडे मिलाकर एक कर दिये गये।

उन दिनों बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी जो आज सर सुरेन्द्र नाथके नामसे सर्कार-भक्त हो रहे हैं, बङ्गाली जनताके नेता थे। इन लोगोंने अपने आन्दोलनको कई रूप दे रक्खे थे। समाचार पत्रों में बराबर लिखते रहना, सभाएं करते रहना, तथा विदेशी वस्तु बहिष्कार—यह इनके प्रधान शस्त्र थे। उद्देश्य यह था कि विलायत की जनताका ध्यान इस ओर आकर्षित हो। बहुत कुछ परिश्रम किया गया पर उद्देश्य की सिद्धि न हुई। इसके दो प्रधान कारण थे। एक तो उन दिनों मुसल्मानोंने सर्कारका साथ दिया। पूर्वीय बङ्गालमें मुसलमान अधिक हैं।

उनको सर्कारने यह विश्वास दिला दिया कि बङ्गाली हिन्दु तुम्हारा अभ्युदय नहीं देख सकते, इसीलिये यह लोग पृथक प्रान्त नहीं बनने देना चाहते। परिणाम यह हुआ कि मुसल्मान मारपीट पर कटिबद्ध हुए और सर्कारका काम बन गया।

दूसरा कारण यह था कि विदेशी बहिष्कारके साधनोंका संग्रह नहीं किया गया। लोग तपस्या करनेके लिये प्रस्तुत न थे। कोई मोटे कपड़ोंको पहिननेके लिये अग्रसर न हुआ। बङ्गलक्ष्मी नामका एक वृहत कारखाना खुला पर इससे सारे बङ्गालका काम तो चल नहीं सकता था। उसमें भी विलायती सूतसे ही काम लिया जाता था। आज महात्मा गान्धीने चर्खे का पुनरुद्धार किया है पर बङ्गालने अब तक उसका जी खोल कर स्वागत नहीं किया है। उन दिनों तो उसका नाम ही नही था।

अतः इन दोनों कारणोंने आन्दोलन को बहुत कुछ निष्प्राण कर दिया। तब कतिपय नवयुवकों को एक अन्य युक्ति सूझी। उन्होंने यूरपके क्रान्तिकारी निहिलिस्टोंके वृत्तान्त पढ़े थे। उन्होंने भारतमें भी उनका अनुसरण करना चाहा। चुपके चुपके शस्त्र संग्रह किये गये, बम बनाये जाने लगे, बड़े बड़े अँग्रेज़ आफ़िसरों और भारतीय पुलिस कर्मचारियोंकी हत्या की गयी तथा धनिक लोगोंको लूटकर कोष एकत्र किया जाने लगा।

इस गुप्त आन्दोलनके कर्ता धर्ता 'भद्रलोक' अर्थात् उच्चकुल के लड़के थे। इनमें से अधिकांश सुशिक्षित और धर्मनिष्ठ थे। इन लोगोंकी यह धारणा थी कि भारत का कल्याण

साधन एक धार्मिक कर्तव्य है। आदर्श के लिये इनके सदा न्योछावर थे।

आज हम जानते हैं कि यह लोग भूल कररहे थे। भारतका हित साधन 'निहिलिज़्म' या हत्याकाण्ड मचानेसे न होगा। भारतका पुनरभ्युत्थान असहयोग और सत्याग्रह द्वारा होगा परन्तु इन नवयुवकोंकी धर्मनिष्ठा, कर्तव्यपरायणता, निर्भयता, तथा दृढ़ सङ्कल्प, की प्रशंसा न करना पाप है। इनको दिग्भ्रम भले ही हो गया हो पर इनकी देशभक्ति प्रशस्त थी। इनकी तपस्या का फल भी हुआ। यद्यपि इनमेंसे कई फाँसी पर लटकाये गये, कई कालेपानी भेजे गये और अधिकांश जेलमें बन्द किये गये, पर सर्कार भी घबरा गयी। बङ्ग विच्छेद मिटाना ही पड़ा।

उस समय जो कई मुक़दमे उठे थे उनमें "अलीपूर बमका अभियोग" अत्यन्त प्रसिद्ध है। दूसरी मई १९०८ (सं० १९६५) का मानिकतल्लाके एक बागमें बम बनानेका बहुतसा मसाला और बहुतसी कारतूसें पुलिसके हाथ लगीं। बहुतसी चिठ्ठियाँ भी मिलीं। इनके आधार पर ३८ मनुष्यों पर राजद्रोहका अभियोग चलाया गया। इनमेंसे एक नरेन्द्र गोस्वामी सर्कारी गवाह हो गया पर उसके दो साथियोंने उसे जेलमें ही मार डाला। फिर भी अभियोग चलता रहा। अभियुक्तोंमें अरविन्द घोष, बारिन्द्रकुमार घोष, हेमचन्द्र दास, उल्लासकर दत्त ऐसे ऐसे लोग थे। यों कहना चाहिये कि इस एक ही अभियोगमें सर्कारने उन सब लोगोंको लपेट लिया था जो क्रान्तिकारियों

के नेता समझे जाते थे। सर्कार की ओरसे प्रसिद्ध मिस्टर नार्टन वारिस्टर थे।

अभियुक्तोंके लिये एक अच्छे वकीलकी खोज हुई। वकील ऐसा चाहिये था जो हाइकोर्टमें खड़ा होकर नार्टनका सामना कर सके। कानूनके असाधारण ज्ञानके साथ साथ अथक परिश्रम की भी आवश्यकता थी। सबसे बढ़कर, तर्क करने, तत्काल उत्तर देने और मार्मिक प्रश्न करनेकी शक्ति चाहिये थी। इसके साथ ही उसको निर्लोभ और निर्भय भी होना चाहिये था; निर्लोभ इसलिये कि इन अभियुक्तोंके पास धन था ही कहाँ जो फ़ीस दे सकते; निर्भय इसलिये कि ऐसे अभियोगमें प्रति वादियोंका पक्ष लेना सर्कारसे वैर मोल लेना था।

इतने सब असाधारण गुणोंसे संयुक्त मनुष्य थोड़े ही होते हैं। कलकत्ता हाइकोर्टके लब्धप्रतिष्ठ वारिस्टरोंमेंसे कोई खड़ा न हुआ। ऐसे अवसर पर चित्तरञ्जन आगे आये। इन्होंने अभियुक्तों, विशेषतः अरविन्द को बचानेका बीड़ा उठाया। जिन लोगोंने उस समय के समाचारपत्रोंमें अभियोगका विस्तृत वर्णन पढ़ा है उनको विदित होगा कि इन्होंने कैसी अद्भुत योग्यता दिखलायी। इनकी बहस, इनकी जिरह, नार्टन से इनका नाकझोंक तथा इनके बयान—यह सब एक प्रकारका मनोरञ्जक साहित्य है। आठ महीने तक अभियोग चला। आठ महीने तक चित्तरञ्जन जिनकी आय योंही बहुत थोड़ी थी, इसीमें लगे रहे। इस बीचमें इनको जो कुछ पारिश्रमिक मिला वह अत्यल्प था। विचार सर लारेंस जेङ्किस और

जस्टिस बुडरॉफके यहाँ हुआ। चित्तरञ्जन का अन्तिम बयान लोमहर्षण, हृदयद्रावक, मर्मस्पर्शी था। उसकी सबल भाषा, उसके सयुक्त कथन, उसके हृदय-निर्गत भाव—सब एक से एक विलक्षण थे। हाइकोर्ट भरा हुआ था, पर श्रोताओंमें ऐसा एक न था जो विमुग्ध न हो गया हो। जजोंने अपना निर्णय सुनाया। अरविन्द निरपराध प्रमाणित हुए। और भी कई अभियुक्त जिनको फाँसी होनेकी आशंका थी प्राणदण्ड से बच गये। ब्रिटिश न्याय परता की लाज रह गयी। विचारालय जयध्वनिसे गूँज उठा। चित्तरञ्जन अरविन्द का हाथ पकड़े विचारगृहसे बाहर निकल आये। इनकी आठ मास की अविरत तपस्या फलीभूत होगयी। सत्यकी रक्षा हो गई।

इस अभियोगसे हाइकोर्टमें इनका सिक्का बैठ गया। मुवक्किलों की धारा इनकी ओर बह चली। देखते ही देखते यह कलकत्ते के अग्रगण्य वारिस्टर हो गये। बङ्गालके बाहर प्रान्तोंमें भी जाने लगे। फ़ौजदारीमें तो इनके बराबर स्थान ही कोई अन्य भारतीय वकील या वारिस्टर होगा। आय और कीर्ति दोनों की साथ साथ वृद्धि होने लगी। जैसा कि श्रीमती नलिनीवाला देवीने इनकी जीवनीमें लिखा है "नदी जेमन समुद्रगर्भे जल ढालिया देय चित्तरञ्जनेर पाकेटे मामला वाजेर टाका छड़ छड़ करिया प्रवेश करिते लागिल"। पीछे से इनकी वार्षिक आय लगभग छः लाख रुपये तक पहुँच गयीथी।

राजनीतिक क्षेत्र में पदार्पण

चित्तरञ्जन को राजनीतिक आन्दोलनके साथ पुराना प्रे
था। विद्यार्थि दशामें ही ऐसे आन्दोलनोंमें भाग लेचुकेथे। परन्
विलायतसे लौटने पर गृहचिन्ताओंके कारण इनको बहुत दि
तक राजनीतिसे दूर रहना पड़ाथा। किसीने सच कहा
"One must make either a life or a living" मनुष
या तो अपने जीवन को ही श्रेष्ठ और आदर्श स्वरूप बनावे य
रुपया ही कमावे। दोनों बातें प्रायः साथ-साथ नहीं हो सकती
अभीतक यह रुपया कमाने लगेथे पर अब अलीपुर अभियोग
के उपरान्त वह चिन्ता जाती रही। पिताका चालीस सहस्र
का ऋण दे दिया गया; इतने दिनों के पीछे दिवालियों की
तालिका से नाम निकला। अपनी प्राकृत उदारता को परितुष्ट
करने का भी अवसर मिला। दीन दुखियों, अनाथों, विद्यार्थियों
को एक प्रबल आश्रयदाता मिल गया। अपनी पुरानी लालसायें
भी पूरी हुईं। जीवन सुख से बीतने लगा। एक धनिकके
घर जैसा वैभव होना चाहिये उस का संग्रह किया गया।
चित्तरञ्जन कलकत्तेके एक बड़े रईस होगये। बहुत से सम्मान

अंग्रेज़ भी इनके वेषभूषा तथा इनके घरके ठाटबाट को सतृष्ण नेत्रों से देखने लगे।

परन्तु 'अतीतहि गुणान् सर्वान्, स्वभावो मूर्ध्नि वर्तते'। प्रकृति दब नहीं सकती। यह हो सकता है कि किसी कारण विशेष से उस पर एक प्रकारका आवरण पड़जाय पर अनुकूल समय पाते ही वह फिर जागृत हो उठेगी। चित्तरञ्जन की आत्मा सार्वजनिक कामों मे भाग, श्रेष्ठभाग, लेनेके लिये बनायी गयी है। एकवार उसके गुणोंका विकाश आरम्भ हुआ था परन्तु अर्थकष्टके प्रचण्ड तापने इस सद्योजात शिशु को भसमसाय कर डाला। ऐसा प्रतीत हुआ कि चित्तरञ्जन एक विख्यात वारिस्टर होंगे और—वस। पर नहीं, पत्तियाँ जल गयी हों परन्तु जड हरी थी। अनुकूल समयकी प्रतीक्षा थी। आर्थिक कष्टों के कम होते ही, इनकी पुरानी अभिरुचि फिर जाग उठी। इन्होंने सार्वजनिक, विशेषतः राजनीतिक, जीवनमें फिर भाग लेना आरम्भ किया।

संवत् १९७४ (सन् १९१७) से इनकी गणना बङ्गालके नेताओंमें होने लगी। इसके पहिले सुरेन्द्रनाथ बनर्जी बङ्गालके 'मुकुटहीन नरेश' (an uncrowned king.) कहे जाते थे। समस्त भारतमें उनकी बडी प्रतिष्ठा थी। उनका अद्भुत भाषण कौशल, अंग्रेज़ी भाषा पर उनका चमत्कारिक आधिपत्य उनकी एकनिष्ठ देशभक्ति तथा भूयः परीक्षित निर्भयता—उनका आतङ्क उनके कट्टरसे कट्टर विरोधी भी मानते थे। पर समय बलवान है। युद्धके पीछे सुरेन्द्रबाबू की नीतिमें परिवर्तन

होने लगा। सर्कारने माण्टेगू चेम्सफ़ोर्ड सुधार स्कीम की। यही झगड़े का कारण हुई। पहिले तो लोग खिल वे समझे कि स्वराज मिल गया। फिर ज्यों ज्यों स्कीमका अवगत होता गया उसका तिरस्कार होता गया। यह प्रत्यक्ष हो गयी कि इस स्कीम से न तो स्वराज मिल स और न अंग्रेज़ोंके अधिकारमें किसी प्रकारकी वास्तविक हो सकती है। केवल जनता की आँखोंमें किसी प्रकार धूल झोंकने की सामग्री है। पञ्जावके हत्याकाण्डके पीछे धारणा और भी दृढ़ हो गयी।

१६१७ में कलकत्तेमें कांग्रेस हुई। श्रीमती बेसेण्ट सभानेत्री थीं। उस समय सुधार स्कीम उपस्थित नहीं की गई थी परन्तु नेताओंमें दो दल बन चले थे। स्वागतकारिणी समितिमें ही झगड़ा हो गया पर किसी प्रकार ऊपर से मेल मलाप हो गया। पीछेसे सुधार स्कीम आयी। बम्बईमें कांग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ। उसने स्कीम को असन्तोषजनक और अपर्य्याप्त बतलाते हुए अंशतः स्वीकार किया। दिल्ली कांग्रेसने, जिसके सभापति मालवीयजी थे, उसका और भी तिरस्कार किया। उसने प्रान्तीय प्रबन्धमें दायित्व पूर्ण प्रतिनिधि शासन को अनिवार्य्य तथा आवश्यक बतलाया। अमृतसर कांग्रेस की भी प्रायः यही नीति रही। अन्तमें नागपुर कांग्रेसने स्वराज को भारतका लक्ष्य बतला कर असहयोग को स्वराज प्राप्तिका अमोघ साधन निश्चय किया।

कांग्रेस की यह नीति कई नेताओंको अच्छी न लगी।

इन नेताओंने सुधार स्कीम में कुछ-त्रुटियाँ तो बतलायी पर इनका सिद्धान्त यह था कि जो मिल जाय उसका तिरस्कार न करना चाहिये। ठीक भी है, भिक्षुकको दाताका कृतज्ञ रहना ही चाहिये। अस्तु, इन लोगोंने कांग्रेस में जाना छोड़ दिया और लिबरल लीग (उदार संघ) नामकी अपनी अलग सभा खोली। यद्यपि देश की अधिकांश जनता कांग्रेस का अनुगमन करती थी पर इन कांग्रेस त्यागी नेताओं ने इस ओर ध्यान न दिया। अपनी राग अलापते ही गये। इनका ऐसा करना सर्वथा अनुचित था। यदि कांग्रेस की नीति उलटी थी तो इनको चाहिये था कि उस संस्थामें रहकर उस की नीति पलटाते। जनताको समझाते और युक्तियों द्वारा लोकमतको अपने अनुकूल करते। ऐसा न करके पृथक् हो जाना इनकी दुर्बलता को सूचना देता था। जो नेता था वह शत्रु का सहायक बन बैठा। सर्वसाधारण का इन पर से विश्वास उठगया।

परन्तु कालचक्रकी गति नही रुकती। श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा था 'निमित्त मात्र भव सव्यसाचिन्'। राष्ट्रका काम नही रुकता, उसको निमित्त मिल ही जाते हैं। ज्यों ज्यों यह पुराने नेता पीछे हटते गये, नये नेता इनका स्थान लेते गये। पुराने और नये नेतृत्व में बडा अन्तर है। अब त्याग की बहुत बडी मात्रा चाहिये। नेता को तपस्वी बनकर रहना पडता है, कांटों की सेज पर सोना पडता है। इसलिये यह भी अच्छा हुआ कि इस मतभेदके कारण पहिचान हो गयी। जनता

इन नेताओंने सुधार स्कीम में कुछ त्रुटियाँ तो बतलायी पर इनका सिद्धान्त यह था कि जो मिल जाय उसका तिरस्कार न करना चाहिये। ठीक भी है, भिक्षुकको दाताका कृतज्ञ रहना ही चाहिये। अस्तु, इन लोगोंने कांग्रेस में जाना छोड़ दिया और लिबरल लीग (उदार संघ) नामकी अपनी अलग सभा खोली। यद्यपि देश की अधिकांश जनता कांग्रेस का अनुगमन करती थी पर इन कांग्रेस त्यागी नेताओं ने इस ओर ध्यान न दिया। अपनी राग अलापते ही गये। इनका ऐसा करना सर्वथा अनुचित था। यदि कांग्रेस की नीति उलटी थी तो इनको चाहिये था कि उस संस्थामें रहकर उस की नीति पलटाते। जनताको समझाते और युक्तियों द्वारा लोकमतको अपने अनुकूल करते। ऐसा न करके पृथक् हो जाना इनकी दुर्बलता की सूचना देता था। जो नेता था वह शत्रु का सहायक बन बैठा। सर्वसाधारण का इन पर से विश्वास उठगया।

परन्तु कालचक्रकी गति नहीं रुकती। श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा था 'निमित्त मात्र' भव सव्यसाचिन्। राष्ट्रका काम नहीं रुकता, उसको निमित्त मिल ही जाते हैं। ज्यों ज्यों यह पुराने नेता पीछे हटते गये, नये नेता इनका स्थान लेते गये। पुराने और नये नेतृत्व में बड़ा अन्तर है। अब त्याग की बहुत बड़ी मात्रा चाहिये। नेता को तपस्वी बनकर रहना पड़ता है, कांटों की सेज पर सोना पड़ता है। इसलिये यह भी अच्छा हुआ कि इस मतभेदके कारण पहिचान हो गयी। जनता

को अपने सच्चे सेवकोंका पता चलगया। जो लोग नयी परि-स्थिति के अनुसार नये ढङ्ग के युद्धमें नये शस्त्रोंके प्रयोग से हिचकिचाते हैं उनका पीछे रहना ही अच्छा है। बङ्गाल में सुरेन्द्रबाबू की लोकप्रियताका ह्रास और चित्तरञ्जन की लोक-प्रियताकी वृद्धि साथ साथ ही हुई। परिणाम यह हुआ कि आज चित्तरञ्जन बङ्गालके एकमात्र राजनीतिक नेता हैं।

सन् १६१७ की बङ्ग प्रान्तीय राजनीतिक सभाके सभापति चित्तरञ्जन चुने गये। उसमें उन्होंने बहुत ही महत्वपूर्ण भाषण किया। उसके पीछे उनके कई और भी भाषण हुए हैं परन्तु हम उनके आवश्यक अंशोंको सानुवाद परिशिष्टमें उद्धृत करेंगे ताकि कथा प्रवाहमें विच्छेद न हो।
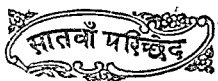
सत्याग्रह आन्दोलन।

सं० १९७३ (सन् १९१७)में भारत सरकारने राज विद्रोहात्मक षड्यन्त्रोंके कारणों और उनके रोकनेके उपायोंपर विचार करनेके लिये एक कमीशन बैठाया। उसके सभापति मिस्टर जस्टिस राउलट थे। कमीशनने अपनी रिपोर्टमें कई षड्यंत्रों का लम्बा चौड़ा इतिहास दिया और अन्तमें यह परामर्श दिया कि साधारण कानून अपर्य्याप्त हैं। इतना ही नहीं, उसने नये कानून का रूप भी बतलाया।

कमीशन की रिपोर्ट अप्रैल १९१८ में लिखी गयी। जनवरी १९१८ में सरकारने व्यवस्थापक सभामें दो नये विधानों की बिलें पेश कीं। इन्हीं को 'राउलट एक्ट्स' कहते हैं। इनका तात्पर्य्य क्या था यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं है। सारे भारतने इनका विरोध किया, परन्तु सरकारने एक न सुना। सुनती भी क्यों, अब युद्ध समाप्त हो चुका था, भारतवासियों को जो कुछ सहायता देनी थी दे चुके थे। जिस ब्रिटिश सरकारने जर्मनी पर विजय पायी थी उसे निहत्थे भारतीयोंका क्या डर था। लोग बकते ही रहे पर पहिला कानून पास हो

हो गया; दूसरा स्थगित रहा। इस काममें तो इतनी जल्दी की गयी परन्तु सुधारवाला कानून महीनोंसे पड़ा था, उसके लिये अवकाश न मिला।

महात्मा गान्धीने पहिले ही कह रक्खा था कि राउलट ऐक्ट का उत्तर सत्याग्रहसे देना होगा। उन्होंने अपना यह संकल्प प्रकट किया कि मैं इस कानून को अमान्य करूंगा। बहुतसे अन्य लोगोंने भी इसी व्रतको धारण किया। इनमें हमारे चरितनायक भी थे।

कानून पास होने पर इस व्रतके चरितार्थ करनेका समय आया। यह निश्चय हुआ कि ३० मार्च और ६ अप्रैलको हड़ताल रहे और लोग उपवास करके अपने अपने मतानुसार ईश्वरसे समयोपयुक्त प्रार्थना करें। इसके साथही महात्माजीने बम्बईमें अन्य रूपसे भी कानून तोड़नेका निश्चय किया।

सरकारसे यह भी न देखा गया। उसने यह निश्चय किया कि भारतवासियों को ब्रिटिश साम्राज्यकी अपरिमित और अदम्य शक्तिका मज़ा चखाना चाहिये। इनको एकवार ही इतना दबा दिया जाय कि उठ न सकें। लोग समझते थे कि हमने युद्धके समय बड़ी सहायता दी है, उसका पारितोषक भी देना था। ब्रिटिश सिंह निःशस्त्र प्रजासे लड़नेके लिये खड़ा हो गया। इसके पीछे जो कुछ हुआ उसे सभी जानते हैं। अहमदाबाद कलकत्ता और कुछ अन्य नगरोंमें छोटे-छोटे दङ्गे हुए। दिल्लीमें व्यर्थ झगड़ा बढ़ाकर उपद्रव किया गया। पञ्जाबको, सरकारके प्रबल सहायक पञ्जाबको, जो सिपाहि-

योंके बलबेके समयसे बराबर सेवा करता था, अपनी राजभक्तिका पूरा पूरा पुरस्कार मिल गया। जनरल डायरको युद्धमें विशेष कीर्ति लाभ करनेका अवसर न मिला था परन्तु थे उद्यमी मनुष्य। उन्होंने अपनी प्रखर बुद्धिकी सहायतासे आपही एक रणक्षेत्रकी सृष्टि की, आप ही विजयी हुए और आपही सत्कीर्तिभाजन हो गये। डायर, ओडायर, वॉस्वल स्मिथ, जॉनसन, प्रभृतिने इस सस्ते यशः पुण्यमें दोनों हाथोंसे सौदा लिया। सौदा क्या लिया, बाज़ार ही लूट ली। उनके सिवाय, कई भारतीयोंने भी अपना नाम अमर कर लिया। रायबहादुर श्रीराम सूदका नाम कौन भूल सकता है ?

ईश्वर ईश्वर करके युद्ध, सरकारी घोषणाओंके अनुसार इसको युद्ध कहना ही उचित है, समाप्त हुआ। तब लोगोंको पञ्जाबका कुछ कुछ सच्चा वृत्त ज्ञात होने लगा। परिणाम वह हुआ जिसकी सरकारको आशङ्का न थी। सारा भारत एक हो गया। आबाल वृद्ध सभी इस अपमान, इस क्रूरता, इस कृतघ्न नीचतासे क्षुब्ध हो गये। शोक और क्रोधने सबको हिला दिया परन्तु सर्कार अब भी न सँभली। एक क़ानून ऐसा बनाया गया जिसके अनुसार अत्याचारी कर्मचारियोंका सारा दण्ड भय जाता रहा। मालवीयजीने कौंसिलमें कई गूढ़ प्रश्न किये उनका उत्तर ही नहीं दिया गया। दिल्ली, लाहौर, अमृतसरके नगरोंको अर्थदण्ड दिया गया। थोड़े दिनोंके लिये डायरकी पदवृद्धि भी की गयी।

अशान्ति बढ़ती ही गयी। विलायत तक शोर मचा।

जाँचके लिये एक कमीशन नियुक्त किया गया। इसको भारत सरकारने नियुक्त किया। मालवीयजीने इसका विरोध भी किया। जब भारत सरकार स्वयं एक प्रकारसे अभियुक्त है तो कमीशनकी नियुक्ति विलायतसे होनी चाहिये पर उनकी बात सुनी न गयी। सुनी कैसे जाय, कौंसिलके थोड़े भारतीय सदस्यों तकने उनका समर्थन किया।

कमीशन नियुक्त हो गया। उसके सभापति थे विलायतके लार्ड हण्टर। उसमें तीन भारतीय सदस्य भी थे, पं० जगतनारायण, सर चिमनलाल सीतलवाद और साहबजादा आफ्ताब अहमद। जनता को इससे कोई विशेष आशा न थी। एक तो जब इसे भारत सरकारने नियुक्त किया था तो यह उसके विरुद्ध कुछ कहे कैसे। भारतीय सदस्योंमें से साहबजादा साहब सरकाराधीन ग्वालियर राज्यके नौकर थे। पण्डितजी निःसन्देह सरकारी नौकर नहीं थे। किसी समय यह बड़े ही निर्भय राष्ट्रवादी थे। उन दिनों नरम दल से मिलगये थे।

कमिशन और सर्कार ने बहुत शीघ्र जनता की आशङ्का का समर्थन कर दिया। वस्तुतः अभियुक्तोंके दो दल थे सर्कारी कर्मचारी और जेल में पड़े हुए पञ्जाबी नेता। उचित यह था कि दोनों के साथ एकसा व्यवहार किया जाता। अर्थात् जबतक कमिशन जांच करता रहे तबतक नेता छोड़ दिये जायँ ताकि वह भी अपने बयान तुलकर तय्यार कर सकें। अन्य सभ्य देशों में ऐसे अवसरों पर यही किया जाता है क्योंकि राजनीतिक नेता चोर डाकू नहीं हैं कि छोड़ देनेसे भाग जायँगे।

पर भारत सर्कारने ऐसा न किया। सर्कारी अफ़सर तो स्वतंत्र थे पर नेता जेल में थे। ऐसी दशा मे कांग्रेसने विवश हो कर यह परामर्श दिया कि इस कमिशनका वहिष्कार किया जाय अर्थात् इसके सामने कोई साक्ष्य न दे।

ऐसा ही हुआ। न तो जेलमें पड़े हुए नेताओंने कोई बयान दिया और न जनताने। सिवाय कर्म्मचारियों और सर्कारके चापलूसोंके, किसी प्रतिष्ठित मनुष्यने साक्ष्य न दिया। फिर भी डायर आदि अंग्रेज़ों की ही साक्ष्य इतनी भीषण थी कि यदि सर्कार न्याय करना चाहती तो उसे पर्य्याप्त सामग्री मिल जाती। इन लोगों को दण्ड पानेका भय तो था ही नही, बहुत सी बातें ही स्पष्ट शब्दों में कह गये। फिर भी अधिकांश रहस्य छिपा ही रहा।

अब आवश्यकता इस बात की हुई कि सर्वसाधारणके सामने सत्याग्रह आन्दोलन से सम्बन्ध रखनेवाले सभी उपद्रवों, और-विशेषत: पञ्जाबके उपद्रव, का सारा कच्चा चिट्ठा रक्खा जाय ताकि भारत ही नहीं सारे सभ्य जगत् की जनता ब्रिटिश शासन की इस समुज्ज्वल कीर्ति से परिचित हो जाय और लोगों को पता लगजाय कि शासनमें कैसा सुधार हुआ है। १४ नवम्बर को इस बातका विचार करनेके लिये कांग्रेस ने एक उपसमिति नियुक्त की। उसके सदस्यों में चित्तरञ्जन भी थे। इस समितिने चार मासके परिश्रमके पीछे अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की। रिपोर्टमें क्या लिखा था यह कहनेकी आवश्यकता नही है। प्रत्येक शिक्षित, (और सम्भवतः अशिक्षित) भारतवासी

उससे परिचित है। उसने बहुत सी ऐसी घटनाओं पर प्रकाश डाला जिनको सर्कारी कमेटी की रिपोर्ट ने, जो लगभग उसी समय प्रकाशित हुई, छिपा रक्खा था।

सर्कार पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। दिखलानेको दो चार व्यक्तियों को कुछ दण्ड दे दिया गया पर वह इतना कम था कि उससे उन लोगोंको कोई विशेष क्षति नहीं हुई। ऐसा कोई प्रबन्ध नहीं किया गया जिससे कि ऐसे अत्याचारों का भविष्यमें होना असम्भव हो जाय। बहुत से भारतीय अबतक जेल में हैं। जिन अंग्रेज़ों की कुछ भी आर्थिक क्षति हुई थी उनको विपुल धन दिलाया गया; इसके विपरीत, भारतीयों को जो कुछ मिला वह नकुछ के बराबर था।

यह हत्याकाण्ड भारतीय इतिहास का एक बीभत्स अध्याय था पर अभी ऐसे और कई अध्याय लिखे जायँगे। परिवर्तन युग की कथा मानवरक्तसे ही लिखी जाती है, स्वतंत्रताकी देवी बिना नरबलिके तृप्त ही नहीं होती। अस्तु, इस आन्दोलन से कई लाभ हुए। एकतो राउलट ऐक्ट जहाँ का तहाँ रह गया; सर्कार को उससे काम लेने का साहस ही न हुआ। दूसरे, नेताओं को भी शिक्षा मिली। उनको यह भलीभाँति विदित होगया कि सत्याग्रह आरम्भ करने के पहिले जनता को संयम की शिक्षा होनी चाहिये। विरोधी चाहे जो करे, पर सत्याग्रही को अभद्र प्रतीकारका स्वप्न भी न देखना चाहिये परन्तु यह तभी होगा जब उसे आत्म संयम का अभ्यास हो।
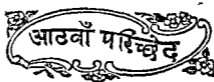
खिलाफ़त ।

इधर तो ब्रिटिश सर्कारने पञ्जाब के मामलेसे समस्त भारतीय जनता को खिन्न करही रक्खा था, उधर एक ऐसी बात हो रही थी जिससे मुसलमान जगत् विशेषतः क्षुब्ध होरहा था। इधर कई सौ वर्षों से रूम (तुर्क साम्राज्य) के सुलतान सुन्नी मुसलमानों के खलीफ़ा माने जाते हैं। खलीफा धार्म्मिक नेता होता है। इसमें सन्देह नहीं कि कई कई अवसरों पर स्वयं मुसलमानों ने उनको खलीफ़ा नहीं माना है। अकबरने अपनेको भारतीय मुसलमानोंका खलीफा घोषित किया था और औरङ्गज़ेब ऐसे कट्टर मुसलमान का भी यही सिद्धान्त था कि भारतका सम्राट् ही भारतीय मुसलमानोंका खलीफ़ा है। जिन दिनों मिश्रके बादशाह स्वतंत्रथे, उन दिनों वह अपने को खलीफ़ा कहते थे अर्थात् एक ही समयमें दो मनुष्य खलीफा कहलाते थे। अतः इतिहास द्वारा यह कहा जा सकता है। कि सुलतानरूम सब मुसलमानों का सदैव खलीफ़ा नहीं रहा हैं।

परन्त इधर कुछ दिनोंमे धार्मिक सिद्धान्तोंके साथ राज-

नीतिक विचारों का संमिश्रण हो गया है। रूम ही मुस्लिम जगत् का एकमात्र बड़ा और प्रभावशाली राज्य है। इसलिये सभी मुसलमानों, विशेषतः सुन्नियों, को उसके साथ असाधारण प्रेम है। वह जानते हैं कि उसके नष्ट होते ही पृथ्वीसे मुसलमानोंका राजनीतिक महत्व, जो अब बहुत ही कम हो गया है, पूर्णतया उठ जायगा। सुलतान अब्दुल हमदीने इस भाव को और भी दृढ़ किया। यह तो उन्हें ज्ञात ही था कि पूरबके ईसाई राष्ट्र उनसे जलते हैं। उनके बचावके दो ही उपाय थे। एक तो यह कि ईसाई राज्योंमें आपसमें मेल न होने पावे। यह उद्देश्य बहुत दिनोंतक सिद्ध हो गया। इंग्लैण्ड, फ्रांस और रूसकी पारस्परिक ईर्षाने कुस्तुन्तुनियाकी बराबर रक्षाकी। बाल्कन युद्धके समय विजयी ईसाई राज्य आपसमें ही लड़पड़े।

दूसरा उपाय यह था कि अभिमुस्लिम भाव (Pan Islamism) की वृद्धि हो। इसका परिणाम यह होगा कि ईसाई राज्योंकी मुसलमानी प्रजा तुर्कीका सर्वनाश न होने देगी। इंग्लैण्डको भारतीय मुसलमानोंका, फ्रांसको अफ्रीकाके मुसलमानोंका और रूसको मध्यएशियाके मुसलमानोंका भय लगा रहेगा। इसमें कृतकृत्यता तो हुई परन्तु केवल भारतमें। जैसा कि स्वयं मौलाना मुहम्मदअलीने एकबार कहा था कि मिश्रतकके मुसलमानोंमें जो तुर्कीके पड़ोसी हैं, यह भाव प्रबल रूपमें नहीं है।

युद्ध छिड़नेपर तुर्कीने जर्मनीका साथ दिया। अब इंग्लैण्ड ो अड़चन पड़ी। तुर्की प्रान्तोंपर आक्रमण करना था और

मुसल्मान सिपाहियोंसे काम लेना था। भारतमें भी शान्ति रखनी थी। अतः प्रधान मंत्री मि० लायड जार्ज (और भारतमें वाइसराय) ने स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि युद्धका परिणाम चाहे कुछ भी हो परन्तु खिलाफ़तके धार्म्मिक प्रश्नसे गवर्नमेंएटका कोई सरोकार न होगा और तुर्क जातिकी मातृभूमि तुर्कोंसे कदापि न छीनी जायगी। इस आश्वासन पर विश्वास करके भारतीय मुसलमानोंने सरकारकी सहर्ष सहायता की।

युद्ध समाप्त हो गया। जर्मनी और उसके साथियोंकी हार हुई। अब मुसलमानोंको यह चिन्ता हुई कि देखें तुर्कोंकी क्या गति होती है। चिन्ताकी बात भी थी। सरकारने कई ऐसी बातें की थीं जिनसे चिन्ता और आशङ्काका उत्पन्न होना स्वाभाविक था।

अभीतक हज़ाज़ (अर्थात् मक्का और मदीनाके पासका प्रान्त) सुल्तानके अधीन था। मक्कामें शरीफ़े मक्का उपाधि धारी धर्म्माधिकारी रहता था। युद्धके दिनोंमें अँग्रेज़ोंकी सहायतासे उसने तुर्कोंको निकाल बाहर किया और आप स्वतंत्र हो गया। अब उसने 'हजाज़ करे बादशाह'की उपाधि धारण की। इराक़ (मेसोपोटेमिया) तुर्कसाम्राज्यका एक प्रान्त था। उसे ब्रिटिश सेनाने जीत लिया और सरकारने यह इच्छा प्रकट की कि यहाँ अँग्रेज़ी संरक्षणमें एक अरब राज्य स्थापित किया जायगा। इस प्रकार फ्रांसके संरक्षणमें शाम (सीरिया) में एक दूसरे अरब राज्यकी स्थापनाका प्रस्ताव हुआ। [अब ये प्रस्ताव कार्य्यरूपमें परिणत हो गये हैं।] इस प्रकार

तुर्क साम्राज्यको तोड़कर तीन अरब राज्य बनाये गये। मिश्र अभीतक अर्ध स्वतन्त्र होते हुए भी तुर्क साम्राज्यका ही एक अङ्ग था, यद्यपि धीरे धीरे उसपर अँग्रेज़ी दबाव बढ़ता जाता था। युद्ध छिड़ते ही अँग्रेज़ सरकारने यह घोषणा करदी कि अब मिश्रका तुर्कों से कोई सम्बन्ध नहीं है और वह अँग्रेज़ साम्राज्य के अधीन है। उसके नरेशकी उपाधि 'खदीव'के स्थानमें 'सुलतान' कर दी गयी। मिश्रवाले स्वतन्त्र होना चाहते थे पर उनकी एक न सुनी गयी।

देखनेमें यह सब राजनीतिक चालें थीं और इनका खिलाफ़त से कोई दृश्य सम्बन्ध न था परन्तु वस्तुतः इनसे मुसल्मानी धर्मपर आघात होता था। रोमके पोप भी धार्मिक आचार्य्य हैं पर मुसल्मानोंके यहाँ ऐसे आचार्य्यसे काम नहीं चल सकता। वह ऐसा खलीफ़ा चाहते हैं जो पर्य्याप्त बल रखता हो और आवश्यकता पड़ने पर धर्मकी रक्षा कर सके। दूसरे, उनका यह कहना है कि मुसल्मान तीर्थस्थान, जैसे मक्का, मदीना आदि, किसी स्वतन्त्र मुसल्मान राष्ट्रके अधीन होने चाहियें। हजाज़, शाम और इराकके बादशाह स्वतंत्र नहीं हैं। सरकारने और भी युक्तियां कीं। कई मौलवी मुल्लाओं द्वारा इस प्रकारके फ़तवे (व्यवस्थाएं) निकाले जाने लगे कि सुलतानको खलीफ़ा मानना मुसल्मानी धर्मका अनिवार्य्य अङ्ग नहीं है।

इसके साथ ही यह जो वचन दिया गया था कि तुर्कोंको मातृभूमि न छीनी जायगी उसका भी उल्लङ्घन सोचा जाने लगा।

यह निश्चय हुआ कि थ्रेस (जिसमें तुर्क ही तुर्क बसे हैं) यूनानियों को देदिया जाय।

इन बातों से मुसलमानों में बड़ी अशान्ति फैली। यों तो अंग्रेज़ों की जीत हुई थी, वह कह सकते थे कि विजेता को अधिकार है कि विजितके साथ चाहे जैसा सलूक करे पर मुसलमानोंको यह बात न भूली थी कि उनको धोखा देकर सहायता ली गयी थी। भारतसे मौ० मुहम्मदअलीके नेतृत्वमें एक डेपुटेशन इस उद्देश्य से विलायत गया कि सन्धि परिषद् के सामने मुसलमानों का वक्तव्य उपस्थित करे परन्तु कोई विशेष काम न हुआ। योरपको सैकड़ों वर्षोंके पीछे इस बातका अवसर मिलाथा कि तुर्कों को यथेष्ट दण्ड दिया जाय, मुसलमानों को प्रसन्न करनेके लिये इस अवसर को कौन खोदे।

इसका परिणाम भारतमें बड़ा बुरा हुआ। मुसलमानोंके राजनीतिक और धार्मिक आकांक्षाओं पर पानी फिर गया। उनके हृदयों पर बड़ा आघात पहुंचा। अभीतक भारतके राजनीतिक क्षेत्रमें मुसलमानों की गणना कट्टर राजभक्तों में होती थी। हिन्दूनेता क्रान्तिकारी और मुसलमान नेता राज्यस्तम्भ समझे जाते थे। परन्तु अब उनकी राजभक्ति एक साथ ही उड़ गयी। उनको सर्कार पर जितना ही विश्वास था अब उतनाही अविश्वास होगया।

ऐसी अवस्था में वह न जाने क्या कर बैठते। कभी उनको यह विचार सूझता था कि विद्रोह करें पर शस्त्र न होनेसे चुप हो रहना पड़ताथा। कभी यह प्रस्ताव उठता था कि भारत से चले-

जायँ पर यह असम्भव है कि छै करोड़ मनुष्य मुहाजिरीन हो जायँ। शंका, क्रोध, दुर्बलता, आदिने मुस्लिम जनता को व्याकुल कर दिया।

ऐसे समयमें महात्मा गान्धी ने उनको सहारा दिया। उन्होंने कहा कि यद्यपि खिलाफ़त मुसलमानोंके लिये धार्मिक प्रश्नहै परन्तु हिन्दुओं को मुसलमानोंके इस दुःखमें समवेदना होनी चाहिये। इसका तत्काल प्रभाव पड़ा। खिलाफ़तका टेढ़ा प्रश्न कांग्रेसके मन्तव्योंके अन्तर्गत होगया। हिन्दुओंने खिलाफ़त सभाओंमें योग देना आरम्भ किया।

इससे अनेक लाभ हुए। एकतो हिन्दू और मुसलमानोंमें सौहार्द बढ़ा। बिना इस सौहार्दके स्वराजकी प्राप्ति होही नहीं सकती। मुसलमानों ने हिन्दुओंके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिये गोरक्षाका प्रश्न अपने हाथोंमें लिया और गोहत्या बहुत कुछ बन्द हो गयी। यदि महात्माजी खिलाफ़तके प्रश्नको अपने हाथों में लेकर मुसलमानों को सन्मार्ग न दिखलाते तो बहुतसे मुसल्मान क्रोधके आवेशमें आकर ऐसे काम कर बैठते जिनसे अन्तमें उनकी बड़ी क्षति होती।

यह कहना अनावश्यक है कि चित्तरञ्जनने इस सम्बन्धमें महात्माजीका साथ दिया। इनके भाव उस वक्तृतामें भली भाँति व्यक्त होते हैं जो इन्होंने आसामकी प्रादेशिक खिलाफ़त सभामें दी थी। उसके कुछ अंशोंका अनुवाद हम नीचे देते हैं। यह सभी हिन्दू नेताओंके भावोंका व्यञ्जक है।

"यदि हम सूक्ष्मदृष्टिसे देखें तो हमको इस बातका किञ्चित्

आभास मिलेगा कि विधाताके अलक्ष्य इङ्गितसे प्रेरित होकर भारतीय महाजाति जगत्के किस प्रयोजनको सिद्ध करनेके लिये उठी है। सभ्यताके इतिहासमें शैशवकालसे लेकर आजतक जितनी घटनाएं घटित हुई हैं उन सभोंने भारतको एकीभूत करनेमे सहायता की है। अपने जातीय जीवनके देवताको जो सुन्दर माला पहिनानी होगी उसके लिये आज भी पुष्प सगृहीत नहीं हुआ। शताब्दियोंमें एक एक करके यह कुसुमराशि सगृहीत होरहा है। न जाने कब हम लोगोंके पूर्ण मिलनरूपी मालाको ग्रहण करके विधाता हम लोगोके जीवनको सार्थक करेंगे। उस मिलनऊषाके पक्षी बोलने लगे हैं। उस मिलन सङ्गीतकी मधुरध्वनि कई विचित्र स्वरोंसे आज कानमें प्रवेश करके मर्मको स्पर्श कर रही है।

ब्राह्मणधर्म्म बौद्ध व जैन धर्म्म, मुसलमान व अन्यान्य धर्म्म इन सबने ही भारतको एक वृहत्तर जीवन लाभ करनेमें सहायता दी है। यह जीवन किसीको नष्ट करके नहीं प्रस्फुटित हुआ है—प्रत्येकको विचित्रताको बचाये रखकर, यथास्थान उसको स्थापित करके, सबके समावेशसे एक नूतन सौन्दर्य खिल उठा है। ऐसा जान पडता है कि जिस वाणीको सुनाकर, जिस मतके उदात्त स्वरसे जगत्को मत्तकरके, भारतका जातीय जीवन सार्थकता लाभ करेगा, जिसके लिये अनेक विप्लव सहकर भारत अवतक प्रस्तुत हो रहा था, उस शुभदिनका प्रभाती गान आरम्भ होगया है।

श्मशानके कुत्तोंको चिल्लाहट चारों ओर मुखरित हो रही है;

शान्तिकी वाणी, प्रेमकी वाणी, इस बीचमें न जाने कहां प्रच्छन्न हो गयी है। कलहके निष्पेषणसे मनुष्यका प्राण आज मार्मिक यातनासे आर्तनाद कररहा है। प्रलयके वेदनासे धरित्री आज अधीर हो उठी है। इस मरण कोलाहलके समय कौन आज मङ्गल शङ्खध्वनि करके मानव स्वाधीनताके नवयुगका उद्बोधन करेगा? प्रतीत होता है कि भारतकी इतने दिनोंकी प्रतीक्षा आज सफल होनेवाली है।

आज हमको देह, मन, वाक्य, में शुद्ध होना होगा। भेदाभेद, हिंसाद्वेषको भूलकर मिलनके सूत्रमें आवद्ध होना होगा।

मुसल्मानी कालमें हिन्दू मुसलमानोंका जातिगत विरोध न था। अब भी हैदराबादमें जहां हिन्दू प्रजा अधिक है राजा मुसलमान है और काश्मीरमें जहां मुसलमान प्रजा अधिक है राजा हिन्दू है। वहां हिन्दू मुसल्मानका विरोध नहीं है। विरोध की सृष्टि हुई है ब्रिटिश शासनमें। किन्तु आज भारत-माताके दोनों सन्तानोंने— हिन्दू मुसल्मानोंने— समझ लिया है कि दोनोंका स्वार्थ एक है—विदेशीका स्वार्थ दोनोंको भिन्न रखनेमें है।

मुसल्मान धर्मपर जो आघात हो रहा है यह आज हिन्दुओं-को दुःख दे रहा है। मुसल्मानोंकी भांति हिन्दुओंके लिये भी यह धर्म कथा है। हिन्दुओंका प्रधान धर्म यही है कि किसी धर्मको निपीड़न न करना और निपीड़ितको पीड़नके हाथसे उद्धार लाभ करनेमें सहायता देना। किसी धर्मकी सार्थकता

इस बातमें नहीं है कि वह किसी अन्य धर्मको नष्ट करे। भगवान् संसारमें कितनी लीलाएँ दिखलाते हैं, कितने भावों, कितने धर्म्मोंके द्वारा अपनी मूर्तिको प्रकट करते हैं, मनुष्य इसको क्या समझेगा? जो भाव एक मनुष्यका होता है वह दूसरेका नहीं होता परन्तु वैचित्र्यका नाम विरोध नहीं है। जबतक एक दूसरेको श्रद्धाभावसे न देखेंगे तबतक नरसमाजमें नारायणकी इस अपूर्व्व लीलाकी कुछ भी उपलब्धि न होगी।

प्रकृत धार्म्मिकोंके निकट यह विरोध नहीं रहता। उनका विरोध अधर्म्मके साथ होता है। मौलाना मुहम्मदअलीसे एक ऊँचे सरकारी कर्म्मचारीने पूछा था "क्या हिन्दू मुसल्मानों-का मिलना सत्य है? जबतक दोनों धर्म्मोंके मिलनेसे एक तृतीय धर्म्म न बन जाय तबतक क्या यह मेल टिक सकता है?" उन्होंने उत्तर दिया "हमारा यह आन्दोलन अधर्म, अत्याचार, अन्यायके विरुद्ध है। यहाँ एक ओर धर्म और दूसरी ओर अधर्म्म है—युद्ध इन्ही दोनों दलोंमें है; हिन्दू, मुसलमान ईसाई का प्रश्न नहीं है। इसीलिये खिलाफ़तके युद्धमें हिन्दुओंने योगदान किया है। जो लोग इसको राजनीतिक चाल कहते हैं वह मिथ्यावादी हैं। मनुष्यके साथ मनुष्यका सम्बन्ध राज-नीतिक चालपर स्थापित नहीं होता—वह प्राणका विषय है और जबतक प्रकृत धर्म्म विश्वास नहीं होता तबतक प्राणकी अनुभूति नहीं होती।"

आज यदि खिलाफ़तकी समस्या कुछ मिटजाय—हम यदि कुछ पाजायँ तो वह पाना सार्थक न होगा। जो दान आज

अनुग्रह करके मिलेगा वह फल छिन सकता है। हमको भिक्षा नहीं चाहिये। हम अपनी योग्यता द्वारा अर्जन करना चाहते हैं— वही पाना स्थायी होगा।

भिक्षुकेर कवे बोलो सुख,
कृपापात्र हये किवा फल ?

यदि हम अपने घरमें ही अपना आत्मसम्मान नहीं बचा सकते, यदि निज देशमेंही पशुके समान रहना होगा, तो हमारा मान, हमारा धर्म्म, कैसे रहेगा ? हमको अन्न नहीं मिलता, वस्त्राभावसे लज्जाकी रक्षा नहीं होगी, हमारे स्त्रीपुत्रोंको पद पद पर लाञ्छना भोग करना होता है—हमारे देशवासियोंको कीट पतङ्गोंकी भाँति प्राण देना होता है, हमारे धर्मकी इज्ज़त कहाँ है ?

इसका एकही उपाय है; स्वराज हमको वीरोंकी भाँति स्वराज अर्जन करना होगा, मनुष्योंकी भाँति स्वराजका भोग करना होगा। उसमें मुसलमान मुसलमानी धर्म्मकर्म्मको निर्विवाद शेष करेगा, हिन्दू हिन्दूके धर्म्म कर्म्म का साधन करके शान्तिके साथ, प्रेमके साथ, सुखके साथ, सम्मानके साथ, रह सकेगा।

हिन्दू मुसलमान सबको एक होकर महाबोधनका पुजारी होना होगा। क्षुद्र स्वार्थका बलिदान देकर निज धर्म्म रक्षार्थ आत्मबल संग्रह करना होगा। वर्त्तमान आन्दोलन उसी आत्म-बल संग्रहका आयोजन मात्र है। इस आयोजनमें सब त्रुटि दूर करना होगा— नूतन जीवनके स्निग्ध ऊषामें विधाताका

आशीर्वाद माथेपर धरकर गहन पथपर यात्राकरके मृत्युको जीतना होगा।"

मैंने इस भाषणके शब्दोंमें यथासम्भव बहुत कम परिवर्तन किया है ताकि पाठकोंको बँगलाका रसास्वादन हो जाय। इसके सुन्दर शब्दोंसे यह भली भाँति प्रकट होता है कि हिन्दुओंने खिलाफ़तमें क्यों योग दिया है और खिलाफ़त और स्वराजमें क्या घनिष्ठ सम्बन्ध है। वस्तुतः बिना स्वराज प्राप्तिके खिलाफत या अन्य ऐसी राष्ट्रीय समस्या सुलझ ही नहीं सकती।

असहयोग-पथावलम्बन ।

पूर्वके दोनों अध्यायोंसे विदित होगया होगा कि देशमें कैसी अशान्ति फैली हुई थी। हिन्दू या मुसल्मान कोई प्रसन्न नही था। देशके भीतर भाँति भाँतिका कष्ट दिया जा रहा था; देशके बाहर उपनिवेशोंमें पाशविक सलूक किया जारहा था, फिर भी कोई ऐसा उपाय नही देख पड़ता था जिससे इस महारोगकी जड कट जाय। सरकारने सुधारका प्रलोभन दिया। लोग उससे सन्तुष्ट नहीं थे फिर भी नेताओंने यही उचित समझा कि उससे काम लिया जाय। पञ्जाबका हत्याकाण्ड और खिलाफतकी प्रतिज्ञा 'भङ्ग देखते हुए भी अमृतसरकी कांग्रेस ने जहां सुधार प्रस्ताव की बहुतसी त्रुटियाँ दिखलायी वहां यह भी कहा कि—"This Congress trusts that, so far as may be possible, they so work the reforms as to secure an early establishment of full Responsible Government." अर्थात् "इस कांग्रेसको यह आशा है कि यथासम्भव (जनताके द्वारा) इन सुधारोंसे इस प्रकार काम लिया जायगा कि दायित्वपूर्ण शासन शीघ्र ही स्थापित हो जाय।"

यह दिसम्बरकी बात है। नौही महीने पीछे कांग्रेसके दृष्कोणमें परिवर्तन हुआ। सितम्बर १९२०में कलकत्तेमें लाला लाजपतरायके सभापतित्वमें कांग्रेसका विशेष अधिवेशन हुआ। उसके सामने सुधारोंका नौ महीनेका अनुभव था। यह अनुभव स्पष्ट शब्दोंमें बतला रहा था कि सुधार सर्कारकी एक चाल है। उसका उद्देश्य केवल यह है कि लोग वकवक करके अपनी शक्तियोंको छिन्न भिन्न कर डालें। सारा अधिकार अब भी पूर्ववत् अंग्रेज़ोंके ही हाथोंमें है।

इस विशेषाधिवेशनमें महात्मा गान्धीका असहयोग प्रस्ताव उपस्थित हुआ। इसके मूल तात्पर्य्यसे आज सभी परिचित हैं। सरकारकी ओरसे सबका हृदय पक रहा था। इसलिये यह सबको ही विश्वास होगया था कि अब सरकारसे किसी बातके लिये प्रार्थना करना या उसके दिये हुए सुधारोंमें भाग लेना अपनी शक्तिका दुरुपयोग मात्र है। अब तो अपने प्रयत्नोंसे ही स्वराज प्राप्त करना होगा।

सभी पराधीन देशोंके सामने एक न एक दिन यह प्रश्न आता है। पहिले पहिले लोग समझते हैं कि मीठी बातों से काम चल जायगा परन्तु बातों से स्वराज नहीं मिला करता। "वीर-भोग्या वसुन्धरा" एक दिन कर्मक्षेत्र में उतरना पड़ता है। जिस दुर्बलता, जिस पाप, के कारण स्वाधीनता खोयी गयी थी उसका यही प्रायश्चित्त है कि शारीरिक और मानसिक कष्ट सहे जायँ। बिना परिश्रम किये कोई बहुमूल्य वस्तु मिल नहीं सकती और यदि मिल भी गयी तो ठहर नहीं सकती क्योंकि हम उसकी

प्रतिष्ठा नहीं कर सकते। इसीलिये राष्ट्रकी स्वाधीनताके लिये युद्ध करना ही पड़ता है।

पर युद्ध दो प्रकारका हो सकता है, सशस्त्र और निःशस्त्र। सशस्त्र युद्ध का तो जगत को बहुत बड़ा अनुभव है। परन्तु निःशस्त्र युद्ध सिवाय हंगरी और कोरियाके किसीने नहीं किया। हंगरीको सफलता भी हुई पर वह भारतकी अपेक्षा बहुत छोटा देश है। इतने बड़े देशके लिये यह नया प्रयोग है। यह युद्ध है पर नूतन प्रकारका। राष्ट्रको युद्धमें सभी कष्ट सहने होंगे—लोग मारे जायँगे, बंदी होंगे, आहत होंगे, अन्नकष्ट होगा, स्त्रियोंको अप्रतिष्ठा होगी, सम्पत्ति लुट जायगी। यह सब होगा पर शत्रुओंपर हाथ न छोड़ेंगे। यह काम बड़ी उत्कृष्ट कोटिके वीरोंका है, पूर्ण तपस्वियोंका है—पाश्चात्य सभ्यतामें रंगे हुए मामूली मनुष्योंका नहीं।

सेनामें संयम चाहिये। सैनिकोंको चाहिये कि प्राणभय छोड़कर सेनापति की आज्ञा मानें। यह बात क्रमशः होती है। देशको भी संयम की आवश्यकता है। इसीलिये राष्ट्रीय स्वातन्त्य युद्धमें पहिला स्थान असहयोग का है। हम सरकार और उसके द्वारा परिचालित अथवा परिपोषित संस्थाओंसे सम्बन्ध न रक्खेंगे। सर्कारी न्यायालयों पाठशालाओं, कौंसिलों सभाओं, उत्सवोंमें कोई भाग न लेंगे। विलायती कपड़ोंका बहिष्कार कर देंगे और स्वदेशी कपड़ोंको ही ग्रहण करेंगे। अभी देशमें पर्याप्त स्वदेशी कपड़ा नहीं बनता, इसलिये फिरसे चर्खो और करघोंका प्रचार करना होगा और यथा सम्भव गाढा

खद्दर गज़ी पहिनना होगा। देशसे मद्यपान उठाना होगा, छूत अछूतका भेद दूर करना होगा।

जब क्रमशः इन बातोंसे जनता सयत हो जायगी तब अन्तिम सीढी—सत्याग्रह—की बारी आयगी। सर्कारी नौकरियोंको छोड देना होगा, सर्कारी विधानों और आज्ञाओंका भङ्गउल्लङ्घन करना होगा और टैक्स देना बन्द करना होगा। इस सीमा तक पहुँचते पहुँचते स्वराज आपही प्राप्त हो जायगा।

यह संक्षिप्त व्याख्या है। कलकत्ते के विशेष अधिवेशन के समय स्वयं लाला लाजपतराय स्कूलों के बहिष्कारके पक्षमें न थे और चित्तरञ्जन स्कूलों और न्यायालयोंके बहिष्कारके विरोधी थे।

तीन महीने पीछे नागपुर में कांग्रेस का बृहत् अधिवेशन हुआ। उसने दो एक छोटे परिवर्तनों के साथ कलकत्तेके मन्तव्यों को दुहराया और यह निर्धारित किया कि भारतका लक्ष पूर्ण स्वराज है। स्वराजकी व्याख्या तो अनिश्चित रक्खी गयी परन्तु उसका मूल अर्थ सभी समझते हैं। अनिश्चित बात केवल इतनी ही है कि हम साम्राज्य के भीतर रहेंगे या उसको छोडकर पृथक् हो जायंगे। इस सम्बन्ध में भी इतना कह देना आवश्यक है कि जो लोग साम्राज्य में रहनेके पक्ष में हैं वे भी यह नहीं कहते कि हम ब्रिटिश साम्राज्य में रहेंगे उनका कहना यह है कि भारत और ब्रिटेन के मिलने से एक भारत ब्रिटिश साम्राज्य की सृष्टि होगी, जिसके हम भी विधायक होंगे। अस्तु, अभी यह प्रश्न भी अनिश्चित है कि स्वराज प्राप्त होनेपर हमारे शासन का रूप कैसा होगा।

नागपूर कांग्रेसके पीछे हमारे चरित नायक पूरे असहयोगी गये। वकालत छोड़दी, अँग्रेज़ी ढङ्गसे रहना सहना छोड़ दिया। बङ्गालका नेतृ-सिंहासन रिक्त था। उसके अधिकारी तो यह पहिलेसे ही हो चुकेथे अब अभिषेक होगया। चित्त-रञ्जनका त्याग असाधारण था; उसके प्रतापसे वह बङ्गालके नेता तो हो ही गये, भारतवर्षके अग्रगण्य नेताओं में भी सहज ही परिगणित हुए। महात्मा गान्धी को एक योग्यतम सहायक मिला; भारतके स्वातंत्र युद्धमें एक महारथीने पद-दलित स्वदेशकी मानरक्षाके लिये शस्त्र ग्रहण किया। लोग इनको देशबन्धु कहते हैं; आज यह नाम सार्थक हो गया।

काम बड़ा टेढ़ा है। मार्ग कण्टकाकीर्ण है। पद पद पर भयानक विघ्न हैं। हमारे पुराण कहते हैं कि जब कोई मनुष्य तपस्या करने लगता है तो उसको पथभ्रष्ट करने के लिये अनेक बाधाएं आती हैं। यही इस समय हो रहा है। राष्ट्रसेवकों का मार्ग बड़ा ही भयङ्कर होरहा है।

एक ओर तो प्रलोभन दिया जा रहा है। अप्सराएं न आती हों, परन्तु धन, सम्पत्ति, वैभव, अधिकारका प्रबल प्रलोभन दिखाया जा रहा है। कितनी ही दुर्बल आत्माएं इस जालमें फँस गईं। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, जगतनारायण, चिन्तामणि, सरकारके मिनिस्टर (अमात्य हैं। सप्रू और शर्मा कौंसिल के सदस्य हैं। सिंहा गवर्नर हैं। और किसको कहें, हर-किशन लाल ऐसा मनुष्य, जिसका घैड्क अँग्रेज़ोंने नष्ट कर दिया, जिसको पञ्जाबके अत्याचारोंके समयमें घोर कष्ट और अपमानका

भाजन बन गया गया, सरकारी मन्त्री होगया। इसी प्रकार कई दुर्बल आत्मायें इस प्रलोभन जालमें फंस गईं।

जो प्रलोभनमें न फँसा उसपर दमननीतिका चक्र घूम रहा है। किसीकी ज़ुबान बन्द की जाती हैं, कोई जेल भेजा जाता है, किसीको काले पानीका दण्ड मिलता है। सम्पत्ति ज़प्त कीजाती है। बूढ़े और लड़के तक पकड़े जा रहे हैं।

यह तो सरकारकी चालें हैं। स्वदेशवासियोंसे भी पूरी सहायता नहीं मिलती। कितने लोग तो अपनेको 'उदार दल-वाले, कहते हैं। यह वह लोग हैं जो पहिले नरम दलवाले कहलाते थे। आजकल यह प्रायः सभी बातोंमें सरकारकी स्वरमें स्वर मिलाकर गानाही अपना परम ध्येय समझते हैं। हमारे बड़े नेताओंमेंसे भी कई दूर खड़े हो गये हैं। विपिनचन्द्र पाल ऐसा मनुष्य, जो राष्ट्रीय दलका एक प्रबल स्तम्भ था, आज अलग है।

यही परीक्षाका समय है। ऐसे विकट समयमें जो मनुष्य निर्भय होकर सिद्धान्त पर अटल रहे, जो प्रलोभन और दमन नीतिका तिरस्कार करके, राष्ट्रकी वेदीपर अपने सर्वस्वकी बलि कर दे, जो राष्ट्रीय कल्याणके लिये अपने सुखदुःखको भूल जानेके लिये प्रस्तुत हो, जो अपनेको देशका अनन्यसेवक समझता हो, वही ऐसे समयमें नेता हो सकता है। देशको विश्वास था कि देशबन्धु ऐसेही नेता होंगे, अतः उसने मुक्तकण्ठसे उनका आह्वान किया।

शेष कथा।

नागपूर कांग्रेसके पीछे देशबन्धु दत्तचित्त होकर असहयोग आन्दोलनमें लगे। इस बीचमें इन्होंने क्या क्या काम किये हैं यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं है। ऐसा कौन शिक्षित भारतवासी होगा जो गत आठ नौ महीनोंके इतिहाससे परिचित नही है। बङ्गालमें इस आन्दोलनने जो कुछ जड़ पकड़ी है वह सब इनके ही प्रयत्नोंका फल है। अभी पश्चिमी बङ्गालमें उत्साह कम है परन्तु पूर्व बङ्गालने इस काममें पूर्ण मनोयोग दिया है।

तिलकस्वराजकोषके लिये भी इनकी चेष्टासे बङ्गालने १५ लाखका वचन दिया। अभी जहाँ तक ज्ञात होता है, इसमें का एक बड़ा अंश मिला नहीं है परन्तु यह दाताओंका दोष है। आजकल स्वदेशीके लिये अनवरत परिश्रम हो रहा है।

जब राष्ट्रीय शिक्षाके सम्बन्धमें आन्दोलन हुआ तो सर आशुतोष मुखोपाध्यायने कहा कि यदि एक करोड़ रुपया हो तो मैं कलकत्ता विश्वविद्यालयको सरकारके पाससे निकालकर राष्ट्रीय कर दूँ। इन्होंने कहा कि यदि सर आशुतोष इसका

वचन दे तो मैं एक करोड़ रुपया इकट्ठा कर दूँगा। इसका उन्होंने कोई सन्तोषजनक उत्तर न दिया।

एक बार मैंमनसिंहके कलकृरने उनपर १४४ धाराके अनुसार जुबानबन्दीकी आज्ञा निकाली। इन्होंने उसे मानलिया क्योंकि कांग्रेसने अभी सत्याग्रहका आदेश नहीं दिया है। पीछे न जाने क्या समझ कर वह आज्ञा उठाली गयी।

यही इनकी इस समय तक की संक्षिप्त जीवनी है। अभी हमको इनसे बहुत कुछ आशा है क्योंकि काम करनेके दिनतो अब आये हैं। ईश्वर इनको चिरायु करे।

परिशिष्ट ।

(क) स्वराज पर भाषण ।

यह श्रीहट्टके टाउनहॉलमें दिये गये बंगला भाषण का यथासम्भव अविकल अनुवाद है। इसमें असहयोग आन्दोलन और स्वराज की बड़ी ही उत्तम व्याख्या की गयी है। इसी लिये, मैंने सारे भाषण का अनुवाद देना उचित समझा है।

प्रथम बात जो मेरे मनमें होती है वह यह है कि आज आप लोगोंने मुझे इस श्रीहट्ट नगरमें क्यों बुलाया है, मेरे आनेके लिये इतना कष्ट करके क्यों इतना आयोजन किया है। इस प्रकार आह्वान करनेके आगे आप लोगोंने प्राणके मध्यमें (मनमें) क्या सोचा था? मुझे क्यों बुलाया? क्यों सादर निमंत्रण करके मुझे यहाँ लाये? मैं कौन हूँ? इस देशव्यापी आन्दोलनमें, स्वराजके लिये इस आन्दोलन में जो सारे देशमें छिड़ा हुआ है, इस शान्तिमय संग्राम क्षेत्रमें जिसकी ओर सभी झुके हुए हैं, मेरी सहायता करनेके लिये बुलाया है या केवल ·· लिये? जिस प्रकार किसी अपूर्व जानवरके आने लोग उसे देखने आते हैं उसी प्रकार देखनेके लिये? पहिले सोच लीजिये कि मुझे क्यों बुलाया है।

आप लोग क्या स्वराज चाहते हैं, सचमुच स्वराज चाहते हैं ? यदि स्वराज चाहते हैं तो इस कालेजमें क्यों इतने लड़के रख छोड़े हैं ? क्यों इस कालेजकी छतपर श्रीहट्टके कलङ्कका निशान अभीतक उड़ रहा है ? जो लोग केवल मुँहसे जयध्वनि करते हैं, जिनके भीतर स्वराजकी वेदना जागी नहीं है, जिनके हृदय स्वराजके रससे भीगे नहीं हैं, वह लोग क्या सचमुच स्वराजकी इच्छा करसकते हैं ? स्वराजका पाना क्या ऐसी वैसी बात है ? दो सभाओंमें गये, 'महात्मा गान्धीकी जय'का चीत्कार किया, उससे क्या हुआ ? क्या मैं समझ लूँ कि इससे स्वराज लाभ होगा ? जब मैं देखूँगा कि अदालतें शून्यप्राय हैं, वकीलोंने अदालतें छोड़दी हैं, स्कूल कालेज शून्य होगये हैं युवकगण दल बनाकर गाँव गाँवमें जाकर लोगोंके हितसाधनका व्रत लेते हैं और ऐसी चेष्टा करते हैं जिससे कृषकोंकी पराधीनता शृङ्खल जाय, तब जानूँगा कि आपलोग स्वराज चाहते हैं। यह किसका जय बोला जाता है ? महात्मा गान्धीका ? महात्मा कौन हैं ? इसमें सन्देह नहीं कि महात्मा एक असाधारण व्यक्ति हैं। परन्तु भारत क्या एक मनुष्यका जय चाहता है ? भारत आज भारतका जय चाहता है। जिस समय हम लोग महात्मा गान्धी की जयध्वनिसे गगनको विदीर्ण करते हैं उस समय मनमें आता है कि वह जय अभी नहीं हुई, परन्तु उस जयकी सम्भावनासे हमारा प्राण पूर्ण हो गया है, इसीसे कहते हैं कि 'महात्मा गान्धी की जय'। जब आपलोग कार्य्यक्षेत्रमें उतरेंगे, जब स्कूल,

कालेज, अदालत, सब शून्य हो जायँगे, जब प्राणकी अशान्त चेष्टा स्वराजके लिये एकाग्र होगी, तभी मैं जानूँगा कि आपलोग स्वराज चाहते हैं, तब महात्मा गान्धीकी पूर्ण जय होगी।

मनमें इसे सोच देखिये असार कल्पना मे मत्त न हो उठिये। बिना चेष्टाके, बिना साधनाके, स्वराज पेड़के फलकी भाँति नहीं टपक सकता। वह साधना अभी आरम्भ करनी होगी। यदि आप ऐसा नहीं कर सकते, यदि आप इस साधनाको सिद्ध करनेके लिये दृढ़प्रतिज्ञ नहीं हो सकते, तो मैं कहूँगा कि आपका यह कहना कि आप स्वराज चाहते हैं झूठ है—यह आपका चाहना नहीं है। विधाताके जगत्में जो जिस बातको चाहता है वह उस बातको पाता है। मैंने अपने जीवनमें देखा है कि मैंने प्राण देकर जिसकी इच्छाकी है उसे पाया है। बिना प्राणकी साधनाके कोई मूल्यवान् वस्तु नहीं मिलती। आपलोग स्वराज चाहते हैं? आप लोग क्यों मुझे निमन्त्रण देकर लाये? यदि आपलोग न बुलाते तब भी मैं आता।

मैं यहाँ क्यों आया हूँ? मैं आपको बतलाता हूँ कि मैं क्यों बङ्गाल देशमें घूमता फिरता हूँ। मेरे हृदयमें एक उद्दाम आवेग है इसलिये बंगालके शहर शहरमें घूमता हूँ। जो शब्द मैंने हृदयमें सुना है वही शब्द मुझे घुमाता फिरता है। जबतक स्वराज न मिलेगा, जबतक स्वराजकी प्रतिष्ठा न होगी, तबतक आप लोगोंको बार बार पुकारूँगा। पुकारकर अस्थिर करूँगा। तबतक आपलोगोंको विश्राम न करने दूंगा। साल-साल, महीने महीने, जहां हूंगा वहांसे बारी बारी पुकारूँगा।

स्वराज चाहिये—आइये, हमलोगोंकी प्राणरक्षाके लिये, देशके लिये, स्वराज चाहिये। बहुतसे लोग इस बातसे भय भीत हो उठते हैं। बहुतसे बोल उठते हैं 'हमको स्वराज न चाहिये।' मैं इससे विरत न हूंगा। जबतक मैं स्वराजके आवेगसे सबका हृदयप्लुत न कर सकूंगा तबतक श्रान्त न हूंगा। मैं आज आया हूं, फिर आऊंगा। आपलोगोंके प्राणोंमें वेदना जगा-लूंगा तब छोडूंगा।

गत २० वर्षोंसे सामान्यभावसे देशकी दशा देख रहा हूँ किन्तु आज पञ्जावके अत्याचार, खिलाफ़तके प्रति अविचारके पीछे जीवन-अर्पण करके स्वराजके लिये लगा हूं। मेरे हृदयपर जैसे किसीने अलक्ष्यरूपसे लिख दिया है कि बिना स्वराजके जीना वृथा है। मैं जानना चाहता हूँ कि श्रीहट्टमें कौन स्वराज चाहता है? मैं पुकारता हूँ आओ, देशमाताकी गोदमें आओ। क्या इस भारतश्मशानमें कोई स्वराजकी साधना न करेगा? कौन स्वराज चाहता है? (मैं, मैं, का कोलाहल) तो आओ, माँके नामपर इस ग़ुलामखानेका सब त्याग करो। कहो 'माँ, जबतक तुम्हारे पाँवमें शृङ्खला रहेगी, तबतक स्कूल कालेज नहीं चाहिये।' जब हमारी माँके पाँवमें बेडी है तो हमको इस शिक्षा दीक्षासे क्या लाभ? श्रीहट्टमें कौन स्वराज चाहता है? मेरी पुकार न सुनोगे? मैं छोडूंगा नहीं, पुकार पुकारकर हैरान करूंगा। फिर पुकारता हूँ, मांकी वेदना किसके प्राणपर लगती है। (मेरे, मेरे, का कोलाहल) कौन मनुष्य है? आओ! यह माँकी पताका उड्डीयमान है, इसके नीचे खडे हो। बङ्गाल

क्या मनुष्य नहीं हैं ? यह अन्धकार क्यों है ? कौन आता है, आओ! खड़े हो, मांकी शृङ्खला छुडानेके लिये आओ। बंगालके कृषक स्वराजका मर्म जानते हैं, स्वराज चाहते हैं। बंगालदेशकी अनेक जगहोंमें जानेसे मुझे इसका अनुभव हुआ है। और हम, सभ्यताके नेता, शिक्षित लोग, हम क्या स्वराज चाहते हैं ? देशके कृषक हमारे चिरनमस्य हैं। कितना कष्ट सहकर वह क्षेत्र कर्षण करते हैं और हम उनके प्रति कितना अत्याचार असम्मान करते हैं। कृषकतक मनुष्य हैं।

और हम शिक्षित लोग, हम क्या मनुष्य हैं ? हम कब छाती पर हाथ रखकर कह सकेंगे कि हम मनुष्य हैं ? जिस शिक्षा-दीक्षाने हमको अमानुष कर दिया है उसको ध्वंस करना चाहते हैं, तब हमलोग फिर मनुष्य हो सकेंगे। तुम्हारे कालेजके प्रिन्सिपल अपूर्व बाबू कहते हैं कि Obstruction (नाश) के पहिले Construction (निर्माण) दरकार है। मैं क्या नाश करने आया हूं ? मैं किसको ध्वंस करने आया हूं ? उसको, जिसने हमको अमानुष कर दिया है, जो हमको 'वन्देमातरम्' मन्त्र नहीं समझने देता, ध्वंस करने आया हूं। शिक्षालय कहां है ? कौन शिक्षक प्राणपर हाथ धरकर कह सकता है कि मैं जो शिक्षा दे रहा हूं वह प्रकृत शिक्षा है ? यह शिक्षालय दास्यालय, गुलामखाना है। यदि मै इस शृङ्खलासे मुक्त करने आया हूँ तो क्या यह कोई अपराध है ? क्या श्रीहट्टके छात्र मेरी बात न सुनेंगे ? मनुष्य, मनुष्य, ढूँढ़ देखो कितने मनुष्य हैं ? मनुष्य होना बडा बोझ है। मैं तुम्हारे

कालेजके प्रिन्सपल अपूर्व बाबूको बात कहता हूं। वह कहते हैं कि मैं यहां शिक्षाको ध्वंस करने आया हूं परन्तु शिक्षा प्रणालीकी Continuity (अप्रतिरुद्ध गति, धाराप्रवाह) चाहिये। मैं पहिले ही कह चुका हूं कि अंग्रेज़ी शिक्षालाभ करके हम लोगोंकी एक भूल धारणा हो गयी है। हमलोग समझते हैं कि मनुष्यका मन कबूतरके दरबेके सदृश है—उसमें धर्म्म, शिक्षा, राजनीति आदि नाना दरबे पृथक् पृथक् बने हुए हैं। यह भूल है। जिस दिन देखूंगा कि बंगालियोंने यह समझ लिया है कि यह समुदय विभाग वस्तुतः विभिन्न नहीं है, उस दिन कहूंगा कि बङ्गाली चैतन्य हुए हैं। उस दिन हम देखेंगे कि सब मिलकर चारों ओर अपनी शक्तिका प्रकाश कररहे हैं। नाना विषय, नाना घोंसले—यह विलायती भूल है। मैं जो यह राजनीति, स्वराजकी वार्ता लेकर देश देशमें घूमता हूं, यह धर्मकी बात है, यह भगवानकी वाणी है। जो लोग कार्य्यमें भगवानकी लीलाके सहचर नहीं होते वह कभी सफलता लाभ नहीं कर सकते।

अपूर्व बाबू मेरे बन्धु हैं। विलायतमें हम दोनों बहुत दिनों तक एक साथ रहे हैं। मैं उनसे कहता हूं कि देशमय प्राणमें जो धारा प्रवाहित हो रही है उसको न्यायशास्त्रका दुर्ग बनाकर बाँधनेकी चेष्टा विधाताके विधानमें टूट जायगी, ठहर न सकेगी। 'नाशके पूर्व, निर्माण' यह युक्ति है कि उत्तर है? निर्माण कौन करेगा? श्रीहट्टवासी या विलायतके अंग्रेज़? इस गुलामखानेका खर्च कौन देता है? भारत-

वासी। इस गुलामखानेके रखने, गुलाम तय्यार करनेके व्ययके २० भागमें एक भाग सरकार देती है, शेष सब स्कूल कॉलेजके लड़कोंकी फीस से आता है। यदि आप लोग खर्च दे सकते हो तो कॉलेज तय्यार नहीं कर सकते ? फिर इस बात के क्या मानी कि पहिले निर्माण हो, फिर नाश। इसके मानी यह हैं कि हम लोग बहुत सुखी हैं ; जबतक हमारा स्कूल कॉलेज न हो जायगा तबतक हम लोग सुखसे रहेंगे ; जब आकाशसे स्कूल कॉलेज टपक पड़ेंगे तब अपूर्व बाबू कहेंगे कि अब गवर्नमेण्टके स्कूल कॉलेज टूट जायँ।

मैं निर्माण और नाश, कुछ नहीं समझता, मैं तो गुलामखानोंसे लड़कोंकी मुक्ति चाहता हूं। यह गुलामखाना टूट जाय, ध्वंस हो जाय। लड़कोंको गुलामखानेमें रखकर गुलाम मत होने दो, यह पाप है। जो असत्यको आश्रय देता है, वह अपराधी है। हमारी सुजला-सुफला मातृ-भूमि आज श्मशान ज्ञात हो रही है। तुम क्या देखते नहीं हो कि यह जाति अब जाति नही रही। माँ के पाँव में क्या चिरदिन तब शृङ्खला ही रहेगी ? यही होना है, तो वङ्गाली जाति ध्वंस हो जाय। ध्वंस होना अच्छा है। जो जाति स्वाधीनता नहीं जानती जो अपनी निजकी भावना नही रखती, उसका ध्वंस ही हो जाय। मिथ्या तर्कशास्त्रकी आवर्जना को दूर करके जब तुम लोग कहोगे कि हम स्वाधोन हैं तो एक मुहूर्तमें स्वाधीन होगे, एक बार मनमें कहो, हम स्वाधीन हैं। यदि तुम्हारे मनमें तुम्हारा निजका कुछ रहा ही नही, यदि तुम विदेशोंके निकट

अपना मन और प्राण खोदोगे, तो अल्लाह के चरणों पर क्या रक्खोगे ? तुम्हारा मन, प्राण तो तुम्हारा रहा ही नहीं। जस्टिस वुडरॉफ़ कहते हैं "This is the cultural conquest of the west" आज अंग्रेज़ोने वाहर ही नहीं किन्तु हमारे मनको जीत लिया है। इसलिये दासकी अपेक्षा भी हीनदास हैं। और इस गुलाम खानेमे हीनदास तैयार होते हैं। जो मन-प्राणमें स्वाधीन नहीं है, उसको जो अपने मनपर अपना अधिकार नहीं रख सकता, उसको विधाता क्या देगा ? स्वराज की बात भली भाँति समझो, मनमें तौलो, मिथ्या युक्ति को आश्रय मत दो। विधाता की वाणी सुननेकी चेष्टा करो। जो विधाताकी वाणी सुनना चाहता है वह सुननेवाला है। यदि कॉलेजमें जाकर कानमें रुई डाल कर बैठना चाहते हो तो रहो। गुलामकी जातिने गुलामी सीखी है, वह गुलाम ही रहेगी।

और यदि यह नहीं चाहते तो सुनो स्वराज की वाणी। तुमलोग क्षुद्र स्वार्थों को बलिदान करो। जो डिप्टी माजिस्ट्रेट होना चाहता है, वह माँ के लिये उस इच्छाकी बलि दे ; जो वकील होना चाहता है वह उस इच्छाकी बलि दे ; जो सर्कारी कर्म्मचारी होना चाहता है, वह उस इच्छाकी बलि दे। उस अर्थलोभ, उस मिथ्यासम्मान लोभ, को भगवान्‌के चरणों पर स्वराजके नाम पर बलि करदो। तब कहो कि स्वराज चाहिये, हम स्वाधीन हैं। प्रत्येक मनुष्य जाति स्वाधीन है। मनसे, प्राणसे, सवेरे, सन्ध्या, कहो कि हम स्वाधीन हैं। हम किसी जातिकी स्वाधीनता हरण नहीं करना चाहते ; परन्तु यह

चाहते हैं कि अन्य कोई जाति हमारे ईश्वरदत्त उन्नति-पथमें बाधा न दे। इसीलिये कहते हैं कि हम स्वाधीन हैं। जो लोग कहते है कि हम स्वाधीन हैं, वह स्वार्थ बलिदान करें। माँ के नाम पर जयध्वनि हो। बोलो 'माँ की जय'। हमारे देश के जो नेता कोर्ट में जाते हैं क्या वह स्वार्थकी बलि न देंगे? क्या उनके कानतक माँ की पुकार नहीं पहुँचती? इन थोड़े से महीने में क्या खाने पहिनने का कष्ट इतना अधिक होगा? जो जायगा उसको सौगुना मिलेगा। इस अत्याचार-निपीड़ित भारतवर्षमें इस जीवननिष्पेषणकारी अमलातंत्र (नौकरशाही)के असत्सङ्गको दूर करो। सेना लाकर तुमपर प्रहार करना तुम्हारे (सर्कारके) स्वत्व की बत है। हम हाथ खींच लेंगे; चाहे तुम कुछ करो, तुम्हारी सहायता न करेंगे, तुम्हारा कोई काम न करेंगे—यह हमारा अधिकार है। मैं वकालत न करूँगा यह क्या बहुत कठिन है? आजतक तो तुम सबके नेता बनकर हाथ पकड़ कर खींच रहे थे। अब देश क्या कहेगा? अब सभ्य जगत् जिस में इतने दिनोंतक आन्दोलन कर रहे थे क्या कहेगा कि जब स्वार्थबलि आवश्यक हुई तो कोई नहीं मिलता? सोचनेसे लज्जा आती है, आखोंमें आँसू आते हैं, कि क्या इस श्रीहट्टमें एसा कोई वकील नहीं है जो क्षुद्र स्वार्थ बलिदान देनेका इच्छुक हो? तुम यदि ऐसा नही कर सकते तो हट-जाओ। मैं देशके कृषकों और मज़दूरोंको छातीसे लगाकर स्वराजके पथ पर चलूँगा। मुझे वक्तृता नहीं चाहिये, कार्य्य-चाहिये। भाई, क्या कोई यह न दे सकेगा? देश पुकार रहा

है। तुम्हारी शृङ्खलाबद्ध माता पुकार रही है। भारतवर्ष चिरकालसे त्याग मन्त्रसे दीक्षित है और तुम लोग इतना त्याग नहीं कर सकते हो? यह स्वार्थ क्या इतना बड़ा है? क्या विधाताकी वाणी निष्फल होगी? क्या तुम्हारा क्षुद्र स्वार्थ स्वराजसे बढ़कर है? यदि मैं प्राण खोलकर (छाती चीरकर) दिखला सकता तो दिखलाता कि मेरे हृदयको कितना आघात पहुंच रहा है।

आओ। भाई उन्मुक्त आकाशके नीचे आओ, उन कृषकोंके सङ्ग आओ जिन से हम आजतक घृणा करते थे। त्यागमन्त्रके द्वारा बङ्गाल एक होजाय। हम जगत्को दिखला दें कि भारतमें त्यागकी जय होती है, भोगकी जय कदापि नहीं। दल बाँध कर लड़के निकलें, देश देशमें जायँ, ग्राम ग्राममें कांग्रेस समितियाँ खुलें। चरखोंके काममें लगो, चरखेके पुनरुत्थान से स्वराजकी प्रतिष्ठा होगी। आप लोग प्रत्येक काममें विधाता का अटूट विश्वास रक्खें। मैं भिक्षा माँगने आया हूँ, भिक्षा दो मैं अर्थ की भिक्षा नहीं, प्राणके स्रोतमें, देश दीप्तिमान हो उठे। भाई कौन मुझे क्षुद्र स्वार्थकी बलि देगा? आओ स्वराजकी जयध्वनि हो, स्वराजकी जय पताका भारतमें उड्डीयमान हो।

(श०—चाथामप्रान्तके सिलहट नगरको श्रीहट्ट कहते हैं)

(ख) राष्ट्रीय शिक्षा।

हम लोगोंका यह घृणित स्वभाव पड़ गया है कि जिन

लोगोंने अंग्रेज़ीकी शिक्षा नहीं पायी है उनको हम घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं; उनको अशिक्षित और निरक्षर कहते हैं और उनकी अज्ञता पर हँसते हैं। परन्तु हमारे यह अपठित देशवासी सहृदय हैं; देवपूजा करते हैं; अतिथियोंका सत्कार करते हैं; अपने कष्टापन्न पड़ोसियोंके साथ समवेदना करते हैं; हमको शाब्दिक शिक्षासे जितना लाभ नहीं हुआ है, उतना लाभ उनको अनुभवजन्य शिक्षासे हुआ है। मुझे तो यह प्रत्यक्ष प्रतीत होता है कि यदि हम अपनी नवोत्थित राष्ट्रीय आत्माको सज्ञानमण्डित करना चाहते हैं तो अंग्रेज़ीके स्थानमें मातृभाषा को माध्यम बनाना होगा। जो शिक्षा हमको आजकल मिलती है वह कृत्रिम और गुलामीकी वस्तु है; वह हमारी राष्ट्रीय आत्माके अनुकूल नहीं हैं, इसलिये उससे हमारी अन्तरात्माको पुष्टि नहीं मिलती।

हमारी युनिवर्सिटियों (विश्वविद्यालयों)से उसी भाँति बी० ऐ० और एम० ऐ० निकलते हैं जिस भाँति अंग्रेज़ी कारखानोंसे बटन और पिनें निकलती है। पर हम मनुष्य भी बनाते हैं? हम जनताके प्रसुप्त आत्मज्ञान और आत्म-सम्मान को भी जगाते है? यह उच्च शिक्षा लोगोंको अन्धा और अभिमानी, अन्तरात्मिहित विमुख, अज्ञान और असज्ञान उपासक, बना देती है। फिर मैं पूछता हूँ, एक झूठे आदर्शके पीछे धन और शक्ति का इतना अपव्यय क्यों किया जा रहा है?

(ग) लोकमतका सर्वोपरि स्थान ।

यह हमारा दृढ़ सङ्कल्प है—हम अपनी योग्यताके अनुसार इस काम पर अपने प्राण न्योछावर कर देंगे—कि हम जनताके शब्दका आदर करायेंगे। जनता का शब्द अवश्य सुना जाय-गा। जो लोग इस शिशु लोकमतका गला घोटकर उसका मुंह बन्द करना चाहते है वह इस स्वाधीनता और भ्रातृत्वके युद्धमें हमारे नेता नहीं हो सकते, चाहे वह कितने ही बड़े मनुष्य क्यों न हों। या तो वे हट जायँ या शिशु लोकमतका साथ दें। लोकमतका समय आ रहा है। हम उस प्रकाशकी झलक अब भी देख सकते हैं। हमको ऐसे लोगोंकी आवश्यकता है जो यह कह सकें 'मेरी कोई सम्मति नहीं है।' यदि हैं भी तो उसे रहने दो, लोकमतका अनुसरण होने दो।

(कलकत्ता कांग्रेसकी स्वागतकारिणी समिति—सितम्बर १९१७)

(घ) स्वायत्त शासन।

मुझे इसकी परवाह नहीं है कि स्विटज़रलैण्ड, इंग्लैण्ड, या अमेरिकाकी शासन-पद्धति कैसी है। हम अपनी पद्धति

हमको यही चाहिये। तबतक व्यर्थ वादानुवाद मत क
अपनी सारी शक्ति एकत्रित करो और गाँव गाँवमें, नगर
मे, प्रान्तीय सभाओंमें और इस कांग्रेसमें एक स्वरसे कहो
जबतक शासनका सारा अधिकार हमारे हाथोंमें न आजा
तबतक हम सन्तुष्ट न होंगे। यह हमारा नैसर्गिक स्वत्त्व
यह प्रत्येक व्यक्तिका स्वत्व है कि वह जीवित रह सके
वृद्धि पा सके। यह स्वत्व हमसे बहाना करके और धोखा दे
अन्यायसे छीन लिया गया है परन्तु अब हम चैतन्य
अभीतक हम सोते थे पर अब ईश्वरकी कृपासे जाग गये हैं
अपना स्वत्व चाहते हैं।

(कलकत्ता कांग्रेस—१९१०)

फि लिए उभाड़नेवाला

ज्ञादो की यादगार !

हिन्दुस्थानका राष्ट्रीय झण्डा

(रचयिता म० गान्धी ।)

यह 'असहयोग-दर्शन' का दूसरा भाग है। इसमें भारत का राष्ट्रीय झण्डा कैसा होना चाहिए, उसका खूब विस्तारसे चित्र सहित वर्णन किया गया है। प्रत्येक भारतवासीको इसके अनुसार झण्डा बनवाकर अपने घरोंमें अवश्य लगाना चाहिए। इसके अलावा, इसमें म० गान्धीके चुने हुए और असहयोगका मर्म बतानेवाले लेख और व्याख्यान, जैसे स्वराज्य का रहस्य, स्वराज्य की शर्तें, सरकारके पागलपनका इलाज, स्वराज्य दौड़ा आ रहा है, वाईसराय स्वराज्य नहीं दे सकते, असहयोगियोंको सेनानानी, विदेशी कपड़ा पहनना पाप है, छूआछूतका पाप, अंग्रेज़ी शिक्षाके दुष्परिणाम, स्वदेशी व्रत आदि अनेक स्वतन्त्रतासे भरे हुए लेख और व्याख्यानोंका अपूर्व संग्रह है। जल्दी मंगा लीजिये। नहीं तो दूसरी वार छपने तक ठहरना पड़ेगा। ऐंटिक कागज़ पर छपा हुआ मूल्य केवल १)